RNI No. 7127/60

डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2017-19

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 55 | अंक : 01 | कुल पृष्ठ : 36 | 4 जनवरी, 2018

शुल्क एक प्रति : 15/- | वार्षिक : 150/- रुपये | पंचवर्षीय 700/- रुपये | दस वर्षीय 1300/- रुपये

लगन के काफिले कभी ना रुकें
कदम जलजलों के कभी ना झुकें
मेरी उमंगों के सगुण रूपधारी
मेरे ही प्रेरक की मैं छाया बनूं

HITKARI & SWARAJ

हितकारी मेडिकोज

राजकीय चिकित्सालय के सामने, बाड़मेर-344001 राजस्थान
फोन : 02982226666

प्रो. पृथ्वी सिंह राठौड़
आजाद सिंह राठौड़
सिद्धार्थ सिंह राठौड़

-: सम्बंधित फर्म :-

हितकारी & स्वराज इंटरप्राइजेज प्राइवेट लिमिटेड
हितकारी प्रोजेक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड

संघशक्ति

4 जनवरी, 2018

वर्ष : 55 अंक-01

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास

शुल्क - एक प्रति : 15/ रुपये, वार्षिक : 150 रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये , दस वर्षीय : 1300 /- रुपये

विषय - सूची

❍ नव वर्ष सन्देश	✍ श्री भगवान सिंह	04
❍ समाचार संक्षेप	✍	06
❍ चलता रहे मेरा संघ	✍ श्री भगवानसिंह रोलसाहबसर	07
❍ पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)	✍ श्री चैनसिंह बैठवास	09
❍ क्षत्रियत्व की प्रतिमूर्ति : दुर्गादास राठौड़	✍ श्री रेवंतसिंह पाटोदा	10
❍ भगवन्नाम की महिमा	✍ स्वामी श्री यतीश्वरानन्द	11
❍ बोरू की सती	✍ स्वामी श्री सच्चिदानन्द	15
❍ अर्जुन और गीता	✍ आचार्य श्री विनोबा भावे	17
❍ अश्रु भरी कहानी	✍ श्री कैलाशपालसिंह इनायती	20
❍ विचार-सरिता (सप्तविंश लहरी)	✍ श्री विचारक	22
❍ गुजरात में सोलंकी कुल का शासन	✍ श्री गिरधारीसिंह डोभाड़ा	24
❍ पुरजा-पुरजा कट मरे	✍ श्री स्वरूपसिंह जिंझनियाली	26
❍ भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में राजपूतों...	✍ श्री भंवरसिंह मांडासी	27
❍ समय भी धन है	✍ श्री विक्रमसिंह गांवड़ी	29
❍ शान्ति कहाँ है?	✍ श्री धर्मेन्द्रसिंह आंबली	30
❍ भक्त शिरोमणि मीरा बाई	✍ श्री ब्रजराजसिंह राजावत खरेड़ा	31
❍ अपनी बात	✍	33

श्री क्षत्रिय युवक संघ

ए-8, तारानगर झोटवाड़ा, जयपुर-302012

दूरभाष : 0141-2466353 *E-mail : sanghshakti@gmail.com*

22 दिसम्बर, 2017

नव वर्ष सन्देश

भगवान द्वारा सृजित धरती माता को देशों के नाम पर स्वघोषित स्वामित्व स्थापित करके टुकड़ों में बांटा जाना आदिकाल से चल रहा है। इन टुकड़ों पर स्वामित्व बदलता भी रहा है। परन्तु जिस धरती पर हम पल रहे हैं उसका हाल जानने का प्रयत्न नहीं किया। इस पर पलने वाले मानव जाति एवं अन्य जीव जन्तुओं के कल्याण के बारे में नहीं सोचा गया। आज स्थिति बिगड़ते-बिगड़ते यहाँ तक पहुँच गई कि प्रभावशाली देशों पर शासन करने वाले शासकों ने विकास के नाम पर धरती को विनाश के शिखर पर खड़ा कर दिया है। बड़े राष्ट्रों ने नई तकनीक द्वारा विनाशकारी अस्त्र शस्त्रों का निर्माण किया। छोटे देशों के विकास और सहायता के नाम पर ऋण उपलब्ध कराकर विनाशकारी अस्त्र-शस्त्र बेचने के लिये बाजार बना दिया है। युद्ध की आशंका से घिरे छोटे देश भी धरती माता की विनाश की भूमिका में खड़े हो गए हैं। शान्ति का प्रस्ताव रखने वाले देश ही अशान्ति का कारण बने हुए हैं।

इसी दौड़ में इसी धरती पर बसा विश्व गुरु भारतवर्ष भी भटक रहा है। इस देश की रक्षा का दायित्व ग्रहण करने वाला नेतृत्व भी भटक गया है। स्वतंत्र कहलाने वाला भारत अपना तंत्र भी नहीं बना पाया। विदेशी तंत्र ही हमारे देश में काम कर रहा है, आज भारत स्वतंत्र नहीं परतंत्र ही रह गया है। एक हजार वर्ष तक परतंत्र होकर अपना तंत्र ही भूल गया है। जिसके तंत्र के अधीन देश, समाज रहता है, उसके गुण दोष भी अधीन देश, समाज ग्रहण कर लेता है।

आदिकाल से लेकर एक हजार वर्ष पहले तक इस देश पर छोटे-छोटे समूह में शासन करने वाले क्षत्रिय ही रहे हैं। अपनी भूमि की रक्षा करने में मौत का मुकाबला भी करते रहे। पूरे संसार में भारतीय संस्कृति की पहचान को बनाये रखने में क्षत्रियों ने अपने प्राण न्योछावर कर दिये। विदेशी बर्बर जातियों ने हमारे भारत को लूट-लूट कर दरिद्र बनाने का प्रयत्न किया, पर कर न सके। आज भी हमारे देश में संसाधनों की कमी नहीं है। परन्तु इन विदेशी आक्रमणों के कारण हमारे धर्म, संस्कृति की बहुत हानि हुई। शिक्षा और समानता के अभाव में यह देश पुनः टुकड़ों में विभाजित हो गया। कभी भाषा के नाम पर तो कभी क्षेत्रीयता के नाम पर अलगाव होता ही जा रहा है। लगता है हम न देश की रक्षा कर पाए

न धर्म, संस्कृति की। हमारे देश की तथाकथित स्वतंत्रता से पूर्व पूज्य तनसिंहजी ने विश्व और भारतवर्ष की दुर्दशा को भलीभाँति अनुभव किया। इस देश, धर्म, संस्कृति की रक्षा का क्षत्रियों को दायित्व बोध कराकर सभी को जाग्रत किए बिना यह काम संभव नहीं था। दूर दृष्टि से आगामी कई शताब्दियों तक की योजना को ध्यान में रखकर 22 दिसम्बर, 1946 में श्री क्षत्रिय युवक संघ की स्थापना की। यह कोई जातीय संगठन नहीं, यह क्षात्रधर्म की पुनर्स्थापना की सुदृढ़ नींव रखी गई। यह केवल राष्ट्रीय संगठन भी नहीं, वैश्विक संगठन का रूप लेगा, ऐसी आदर्श कल्पना पूज्य तनसिंहजी की रही है। क्षत्रियों का संगठन इसलिए दिखाई देता है कि लोग क्षत्रिय की परिभाषा भी नहीं जानते। आदर्श क्षत्रिय का जीवन संसार के लिये है, अपने लिये नहीं।

पूज्य तनसिंहजी ने बताया कि व्यष्टि का समष्टि को समर्पण और समष्टि का परमेष्टि में समर्पण किए बिना संसार में परम सुख और परम शान्ति का अवतरित होना संभव नहीं। व्यक्ति के संस्कारों का सृजन करने से ही समाज व राष्ट्र के संस्कारों का सृजन संभव है और इसी भाँति हमारा पूरा देश संस्कारित होकर ही संसार की पूरी मानव जाति को संस्कारित करने का एक महा-अभियान है-श्री क्षत्रिय युवक संघ। शरीर-मन-बुद्धि-प्राण को सुदृढ़ व संस्कारित करने का एक मानवीय आंदोलन है यह श्री क्षत्रिय युवक संघ। स्वकेन्द्रित मानव को समाज-राष्ट्र व मानव केन्द्रित बनाना साधारण कर्म नहीं। इस मार्ग पर चलने वालों का चरित्र सर्वोत्कृष्ट बनाने की आवश्यकता है। शौर्य, तेज, धैर्य, दक्षता, विकट परिस्थितियों में भी पलायन न करने की प्रवृत्ति, दान व ईश्वरीय भाव का निर्माण करना ही हमारे संघ का लौकिक उद्देश्य है। और यह है हमारा स्वधर्म। स्वधर्म का पालन कर, परमपिता परमेश्वर को प्राप्त करने का प्रयत्न ही हमारा अलौकिक उद्देश्य है। यही गीता में भगवान ने मार्गदर्शन दिया है। इसी मार्ग पर त्यागमय जीवन बनाकर बिना थके चलते रहना है। एक दिन, चाहे हजारों वर्ष पश्चात ही क्यों न हो, विनाश के सम्मुख खड़ी संपूर्ण मानवता के लिये स्थिर सुख शान्ति का प्रभात अवश्य आयेगा क्योंकि यह हमारी नहीं परमेश्वर की चाह है। यह अवश्य पूर्ण होगी। हम हमारे समाज, हमारे राष्ट्र और संपूर्ण धरती के कल्याण के लिये कटिबद्ध हैं। सदैव परमेश्वर की इस मांग का अनुभव करते हुए-चरैवेति चरैवेति।

आज के दिन श्री क्षत्रिय युवक संघ 72वें वर्ष में प्रवेश कर रहा है। आओ इस मंगल प्रवेश का स्वागत करें। मैं इस पुनीत संघ की ओर से सबका अभिनन्दन करता हूँ।

भगवान सिंह

(संघप्रमुख)

समाचार संक्षेप

संस्थापक का निर्वाण दिवस :

श्री क्षत्रिय युवक संघ के संस्थापक पूज्य तनसिंहजी 7 दिसम्बर, 1979 को शरीर रूप से हमारे साथ नहीं रहे परन्तु जो कुछ उन्होंने हमें दिया, वह सदैव हमारे साथ रहेगा। श्री क्षत्रिय युवक संघ के रूप में उन्होंने हमें एक ऐसा मार्ग दिया है जिससे हमारा जीवन सद्मार्ग पर निखार प्राप्त करता जाए। ऐसा मार्ग जिसमें व्यक्ति अपने स्वधर्म मार्ग पर बढकर परमसिद्धि की ओर उन्मुख रहता है, जैसा स्वयं भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है,-

स्वे स्वे कर्मण्यभिरत: संसिद्धिं लभते नर:।

अर्थात्-अपने-अपने कर्तव्य कर्म में प्रीति पूर्वक लगा हुआ व्यक्ति सम्यकसिद्धि (परमात्मा) को प्राप्त कर लेता है।

व्यक्तिगत रूप से जीवन को इस मार्ग पर चलकर सार्थक बनाने के अमूल्य लाभ के अतिरिक्त संस्कार के मार्ग पर चलने वाले समाज-जन का संगठन बनने का लाभ भी प्राप्त होता है। ऐसा संगठन जिसका ध्येर्य, मार्ग और भाव एक हो। ऐसा संगठन ही सच्चा संगठन हो सकता है, और हमारे समाज को आज सच्चे संगठन की ही आवश्यकता है। जिसने हमें ऐसे मार्ग का राहगीर बनने का अवसर प्रदान किया है, उसके प्रति कृतज्ञता का भाव छलक कर आना स्वाभाविक है। कृतज्ञता का वही भाव उनके निर्वाण दिवस पर भी प्रकट होता है।

श्री क्षत्रिय युवक संघ की प्रत्येक शाखा में निर्वाण दिवस के अवसर पर संस्थापक की याद में कार्यक्रम रखा गया। कुछ शाखाओं ने सामुहिक रूप से कार्यक्रम किया तो कुछ शाखाओं ने अपनी-अपनी शाखा में कार्यक्रम रखा। बाड़मेर में पूज्य तनसिंहजी की छतरी पर, श्रद्धांजलि कार्यक्रम रखा गया। जयपुर, बीकानेर, जोधपुर, कुचामन, जैसलमेर स्थित कार्यालयों में कार्यक्रम रखे गए तो उदयपुर, चित्तौड़ आदि क्षेत्रों में भी कार्यक्रम आयोजित हुए। मेड़ता, जालोर, भीनमाल, सांचोर, सायला, आबूरोड़, चौहटन बालोतरा के अलावा अनेक ग्रामीण शाखाओं में कार्यक्रम आयोजित हुए।

गुजरात में तो इस वर्ष स्वयंसेवकों की सक्रियता ने अनेक नई शाखाएँ प्रारम्भ की हैं, अत: अनेक जगहों पर निर्वाण दिवस कार्यक्रम रखे गए। अन्य प्रदेशों में भी कार्यक्रम आयोजित हुए जिसमें सूरत, मुंबई, पूना आदि स्थान तो हैं ही, चिकमंगलूर (कर्नाटक) में भी निर्वाण दिवस पर कार्यक्रम रखा गया।

हम ऐसे कार्यक्रमों से अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए उन्हें याद करते हैं। परन्तु उनकी वास्तविक याद तो उनके बताए पथ पर तत्परता और पूर्ण निष्ठा से कर्मरत रहना है। ऐसे अवसरों पर हमारे चिंतन का विषय यही होना चाहिए कि क्या मैं निरंतर रूप से आत्म निरीक्षण करता हुआ भली प्रकार से अपने नियत पथ पर बढने का प्रयास कर रहा हूँ? यदि नहीं, तो क्यों? उस क्यों का निराकरण करने में जुट जाऊँ।

शिक्षिका शिविर :

संस्कार निर्माण कार्य बालिकाओं में भी हो, इस आवश्यकता ने बालिकाओं के प्रशिक्षण शिविर प्रारम्भ किए। कई वर्षों से बालिकाओं के शिविर चल रहे हैं और धीरे-धीरे यह प्रयास रहा कि इन बालिका शिविरों में प्रशिक्षण का कार्य महिलाएँ ही करें। इसी के चलते महिलाएँ तैयार होती रही। इन महिलाओं को प्रशिक्षण में और अधिक प्रखरता लाने के लिये समय-समय पर आवश्यक बातें बताई जाती रही हैं। इसी संदर्भ में 10 दिसम्बर से 12 दिसम्बर तक ऐसी शिक्षिकाओं का एक शिविर संघशक्ति कार्यालय में आयोजित किया गया जिसने इनके आत्मविश्वास को प्रखरता दी। यह भी निश्चय किया गया कि गत वर्षों से बाल शिविर आयोजित हो रहे हैं वे भी अब महिलाएँ ही लें। क्योंकि संस्कार निर्माण में माता का अत्यधिक महत्त्व होता है इसलिए महिलाएँ ही

(शेष पृष्ठ 21 पर)

चलता रहे मेरा संघ

(विवेकानन्दपुरम्, कन्याकुमारी में आयोजित द्वितीय दंपती शिविर में दिनांक 20.2.2013 को संघप्रमुखश्री भगवानसिंहजी रोलसाहबसर द्वारा उद्बोधित प्रभातकालीन उद्बोधन का संक्षेप।)

यह दूसरा दंपती शिविर अब अस्तांचल की ओर बढ रहा है। यहाँ श्री क्षत्रिय युवक संघ ने क्या संदेश दिया; कन्याकुमारी, विवेकानन्द, परमेश्वर व आत्मा ने क्या संदेश दिया और हमने क्या सुना? इन सब ने हमें क्या दिखाया और हमने क्या देखा? यदि हमने सार्थक सुना है या सार्थक देखा है तो निश्चित ही हमारे जीवन में सार्थकता आएगी। यदि निरर्थक की ओर हमारे कान व आँखें तरसते रहे तो हमारा बौद्धिक, मानसिक स्वास्थ्य कैसा रहेगा यह सोच सकते हैं। हमने यहाँ क्या खरीदा अर्थात क्या उपलब्ध किया और उसके लिये क्या भुगतान किया? पवित्रता उपलब्ध करने के लिये अपवित्रता का त्याग आवश्यक है। अपवित्रता के त्याग के साथ ही जीवन में पवित्रता स्वत: आ जाती है। अपने भावों की दरिद्रता और दुर्गुणों के त्याग के बाद पवित्रता का आह्वान नहीं करना पड़ता, वह स्वत: आ जाती है। आप अपने मोह और अपनी आसक्ति को शिविर में हिला पाए हैं या नहीं, इस पर विचार करें।

शिविर से आप दंपती में परस्पर प्रेम की बरसात न कर सकें तो इस प्रकार से शिविर करने का कोई लाभ नहीं हुआ। आप अपने परिवार में सर्वप्रिय हैं या नहीं? यदि नहीं, तो कारण क्या है? कारण मालूम करके उस कारण को दूर करने की यहाँ उपलब्धि की है? उपदेशक का उपदेश सार्थक तभी है जब वह अपने परिवार में अपनी बात सुनाकर उस बात को मनाने में सफल हो जाए। अन्यथा, वह जन-मानस में अपनी बात मनवाने में सफल नहीं होगा। मनुष्य का लक्ष्य है-ईश्वर की प्राप्ति करना। ईश्वर हर प्राणी के हृदय में निवास करता है, अत: हर प्राणी परमेश्वर का ही स्वरूप है। ऐसा हम मानें, ऐसी अनुभूति प्राप्त करने की आकांक्षा जगी है? त्याग है, तो राह है-अनुभूति भी प्राप्त हो सकती है।

सर्व-प्रिय गुण प्रेम है। क्या प्रेम की सरिता हमारे दिल-दिमाग में चल पड़ी है? कुछ दिखाई देता है कि जाना कहाँ है? हमने गीत गाया था-'मैं निर्झर हूँ पर्वत से बह गहरा नीचे तक आता हूँ।' धरती के आंचल को तीर्थ बनाने के लिये निर्झर जैसे बहकर नीचे आता है पत्थरों का प्यार लेकर, क्या हम भी वैसे बन पाएंगे? यह कठिन हो सकता है पर असंभव नहीं कि हम भी परिवार में, समाज में प्रेम की सरिता बहा सकें। कठिनाइयाँ हो तो भी मार्ग नहीं त्यागा जा सकता।

सर्वप्रिय बनिये। पहले परिवार में प्रिय बनें। पति-पत्नी प्रिय बनें। परस्पर दोष न देखें। दोष देखने पर उपासना का कोई अर्थ ही नहीं है। मैं अपने आप को भी देखूं। मैं अपने शरीर, मन, बुद्धि के प्रति कहीं क्रूर तो नहीं हो गया हूँ। शरीर की सेवा भी आवश्यक है। शरीर साध्य तो नहीं है पर साध्य की यात्रा के लिये साधन है और साधन को संभाल कर रखना चाहिए। इसी शरीर से साधना होती है, यह हमें भगवान का दिया हुआ उपहार है। खान-पान में ध्यान रखें। शरीर निरर्थक नहीं हमारे काम का है।

मन चंचल है। चंचलता उसका स्वभाव है। बच्चा चंचल होता है, कई बार चंचलता में गलतियाँ करता है पर हम उससे घृणा तो नहीं करते। चंचल मन से भी प्यार करना सीखें। उसकी शरारतों को देखने का प्रयास करें। बच्चे का जैसे ध्यान रखते हैं, वैसे ही मन से प्यार करें पर उसके क्रियाकलाप देखें। उसके क्रियाकलाप पर बराबर नजर रखना कठिन है पर असंभव नहीं। ध्यान बुद्धि पर भी रखना है, वह स्वार्थी न बने। अहंकार भी बिगड़ न जाय। मैं संसार में कैसे आया, मुझे संसार में

क्या करना है, मुझे कहाँ जाना है, ऐसा विचार चलता रहे। अष्टधा प्रकृति (पंच महाभूत-क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर; तथा अहंकार, बुद्धि और चित्त) के शरीर से खिलवाड़ न करें। स्थूल शरीर तथा सूक्ष्म शरीर लक्ष्य नहीं हैं, साधन हैं पर इनके प्रति लापरवाही न हो। गाड़ी को संभालने से वह ठीक चलती है, इसलिए गाड़ी का पूरा ध्यान रखते हैं, पर गाड़ी मंजिल नहीं है, साधन है। उसके प्रति आसक्ति और मोह नहीं रखें, पर ध्यान रखें। पति सहायक बने पत्नी का और पत्नी सहायक बने पति की। परस्पर सहायता से लक्ष्य की ओर बढें। परमेश्वर से क्या सम्बन्ध बनाया जाय, नवधा भक्ति है व अनेक सम्बन्ध हैं। संसार में मधुर सम्बन्ध है पति-पत्नी का। उस मधुरता और अपनत्व को विस्तारित कर ईश्वर से सम्बन्ध स्थापित करें। पत्नी का आदर करें। महिलाएँ परमेश्वर की बेटियाँ हैं। आपको उपहार के रूप में मिली है, उसका आदर करें। आप सभी वानप्रस्थ अवस्था की आयु वाले हैं। अब तो पत्नी मित्र के रूप में रह गई है। मित्रता में न तो प्रतिस्पर्धा होती है और न ही कोई अधिकार की बात रह जाती है। वानप्रस्थ के बाद यही स्थिति हो जानी चाहिए। इस मित्रता की अवस्था में पति या पत्नी अपने मित्र की नजरों में गिर न जाए।

खामी न देखें, द्वेष न करें। नजरें दोष पर क्यों टिकती हैं, किसी में दोष क्यों ढूंढते हैं, हर व्यक्ति में गुण भी बहुत मिल सकते हैं। इसलिए दोष न देखकर गुण देखें। अपने दुश्मन के भी दोष न देखकर उसके गुणों पर नजर रखें। हमारे भाव ऐसे हों कि दुश्मन को मारना हो तो भी कृपा करके मारें। जो हमारी निन्दा करता है, उसके इस दोष पर नजर न रखकर उसमें गुण देखें।

श्री क्षत्रिय युवक संघ की इच्छा है कि आप लोग सर्वप्रिय बनें। सर्वप्रिय बनने का प्रारम्भ अपने परिवार से करें। श्रेष्ठता पूर्वक प्रारम्भ करें। परस्पर बहुत दूरियाँ रही होंगी। दूरियों और गलतफहमियों के कारण दुखी रहे होंगे, पर अब भविष्य में ऐसा न हो। यह बात इस शिविर के बाद बराबर याद रहे और खटकती रहे। प्रारम्भ में परस्पर सद्व्यवहार का नाटक ही हो भले पर निरंतर बने रहने से सद्व्यवहार स्वभाव बन जाय। इस आयु में मोह भी अब हर बात में समाप्त हो जाना चाहिए।

जीवन के प्रथम चरण ब्रह्मचर्य आश्रम में रज, वीर्य का उपार्जन हो और ऊर्जा की रक्षा हो। द्वितीय चरण ग्रहस्थाश्रम उस ऊर्जा का सदुपयोग हो और तीसरे चरण वानप्रस्थ आश्रम में मोह-आसक्ति से मुक्ति पाई जाए, ऐसा हमारी आश्रम प्रणाली में प्रावधान है। आप लोग इस तीसरे चरण में पहुँच चुके हैं। आज वन में प्रवास करने की न सुविधा है और न उसके अनुरूप वातावरण है। स्त्रियों को तो पूर्व में भी वनवास की सुविधा नहीं थी। आज तो घर में रहते हुए सांसारिक दायित्वों में अलिप्त बनने की आवश्यकता है।

षट्विकार (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद व मत्सर) तो संसार में रहते मानव में रहेंगे। हमारा अभ्यास यह हो कि ये हमारे मित्र बन जाएं। जैसे कामना रहेगी, पर कामना करें सद्कर्म की, कल्याण की। कामना करें सेवा करने की। कामना के त्याग की बात नहीं है, काम अर्थात् कामना श्रेष्ठता की करें। कामना पूरी न होने पर क्रोध उबलता है, जो कि दुश्मन है। क्रोध तो रहे चाहे, पर क्रोध करना सीखें अपने आप पर, न कि अन्यों पर। भीतरी शत्रु को मारने के लिये क्रोध करें। मद-अहंकार भी दुश्मन है, पर जातीय स्वाभिमान, मैं राजूपत जाति में जन्मा जिसका उज्ज्वल इतिहास, यह गर्व की बात है। मद श्रेष्ठ मार्ग पर आ जाए। क्षत्रिय मूल्यों के प्रति अहंकार हो तो वह मित्र बन जाएगा। मोह दुश्मन है पर पू. तनसिंहजी हमारे प्रति बड़ा लगाव रखते थे, भगवान की राह पर चलने वालों के प्रति मोह रखकर उसे मित्र बना लें। लाभ ही लोभ का जनक है, सफलता लोभ का कारण है। रुख बदल दें-परमेश्वर की राह पर चलने का लोभ ढूंढें। लौकिक नहीं, पारलौकिक लोभ की ओर

(शेष पृष्ठ 28 पर)

गतांक से आगे

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

बालक तणेराज बड़ा ही समझदार व पढने में भी बड़ा होशियार था, इसलिये हर अध्यापक उनसे स्नेह करता था और सभी विद्यार्थीगण उन्हें सम्मान व इज्जत देते थे। अपने लेखन, डिबेट और अध्ययन सम्बन्धी हर कार्यक्रम में बालक तणेराज अव्वल था, साथ ही उसने एक छात्र संगठन खड़ा किया, इसलिये वह सब में चर्चित था। अब वह राजपूत चौपासनी स्कूल में एक अभिनेता के रूप में उभरने लगा। उनकी ख्याति चारों ओर फैलने लगी। अब माँसा का तणेराज, तणेराज से तनसिंह हो गया। फूल अपनी खुशबू से महक छोड़ जाता है, उसी भाँति पूज्य श्री तनसिंहजी चौपासनी स्कूल में अपनी महक छोड़ चौपासनी को अलविदा कर आगे उच्च शिक्षा हेतु झुन्झुनू जिले में पिलानी के लिये प्रस्थान कर गये। पिलानी जगत सेठ बिड़ला का पैतृक गाँव था, जहाँ उच्च शिक्षा की समुचित व्यवस्था थी।

पूज्य श्री तनसिंहजी की पढने व लेखन में बहुत रुचि थी। पिलानी में रहकर पूज्य श्री ने पिलानी कॉलेज के पुस्तकालय का भरपूर लाभ उठाया। उन्होंने साहित्य का बहुत अध्ययन किया। पूज्य श्री उच्च कोटि के साहित्यकार थे। उनका साहित्य पथ विचलित मानव समाज को राह दिखाने, उनका मार्गदर्शन करने तथा सर्वजन हिताय व सर्वजन सुखाय की शिक्षा देता है। उन्होंने अपने साहित्य में संघ के जीवन दर्शन की विस्तार से व्याख्या की है।

पिलानी में रहकर पूज्य श्री तनसिंहजी ने राजस्थानी साहित्य का भी भरपूर अध्ययन किया और राजस्थानी भाषा के दोहों-सोरठों का काफी संग्रह किया। राजस्थानी, साहित्य का गहन अध्ययन कर पूज्यश्री ने ''राजस्थान रा पीछोला'' नाम की एक पुस्तिका भी लिखी। बिड़ला जी को सम्बोधित करते पूज्य श्री तनसिंहजी ने कहा-

''तुम्हारे यहाँ रहकर मैंने साहित्य का अध्ययन किया है। मराठी, पंजाबी, गुजराती, बंगाली आदि सभी को भाषा का स्थान दिया गया और राजस्थानियों की भाषा को केवल बोली का स्थान दिया गया। तुम्हारे यहाँ रहते हुए मैंने राजस्थानियों की बोली के दोहों-सोरठों का काफी संग्रह किया और एक पुस्तक भी लिखी जो प्रकाशित हुई। साहित्य के उस अध्ययन ने मुझे अपने समाज की गौरवमयी परम्परा का भान कराया और मुझे आत्म सम्मान की झलक महसूस हुई।''

राजस्थानी साहित्य में वीर रस की प्रचुरता है, इसके साथ-साथ शृंगार, करुण, वात्सल्य इत्यादि अन्य सभी रसों का समावेश पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होता है। ''राजस्थान रा पीछोला'' नाम की पुस्तिका से करुण रस का रसास्वादन किया जा सकता है।

पिलानी में रहते पूज्य श्री तनसिंहजी ''राजपूत नव युवक मण्डल'' के मंत्री रहे। पूज्य श्री के प्रयास से यहाँ एक ''उत्थान नामक हस्तलिखित पत्रिका'' निकाली जानी शुरू की। पूज्य श्री इसके उप सम्पादक रहे। यह हस्त लिखित पत्रिका राजपूत समाज के युवा वर्ग में बहुत ही लोकप्रिय हुई।

कानून की पढाई के लिये पूज्य श्री तनसिंहजी जब नागपुर गये तो राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (RSS) के सम्पर्क में आये। नागपुर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के क्रियाकलापों का केन्द्र था। जब वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यक्रमों में सम्मिलित हुए और उनके उन कार्यकर्मों को नजदीक से देखा तो उन्हें भान हुआ कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ जिनके शौर्य और यशोगाथाओं का गुणगान कर रहा है, वे यशस्वी महापुरुष हम क्षत्रियों की ही परम्परा में थे।

गुरुजी गोलवलकर जी को मन ही मन सम्बोधित

(शेष पृष्ठ 14 पर)

गतांक से आगे

क्षत्रियत्व की प्रतिमूर्ति : दुर्गादास राठौड़

– रेवंतसिंह पाटोदा

भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के अठारहवें अध्याय के तैंयालीसवें श्लोक में क्षत्रिय के गुणों का वर्णन करते हुए बताया कि शौर्य, तेज, धैर्य, दक्षता, युद्ध से पलायन न करना, दानशीलता एवं ईश्वरीय भाव क्षत्रिय के स्वाभाविक गुण हैं। दुर्गादासजी इन गुणों की प्रतिमूर्ति थे। विगत अंकों में हमने शौर्य, तेज, धैर्य एवं दक्षता का विवेचन पढा। इस अंक में प्रस्तुत है पांचवें गुण-युद्ध से पलायन न करना एवं दुर्गादास जी के जीवन का विवेचन।

युद्ध से पलायन न करने का सामान्य अर्थ तो युद्ध से न भागना होता है लेकिन गहराई में जाएँ तो अर्थ निकलता है कि भारी से भारी संकट आने पर भी कर्तव्य पालन से मुख न मोड़ना। दुर्गादासजी का तो पूरा जीवन ही कर्तव्य का ही दूसरा नाम है। पर्यायवाची है। उन्हें कोई संकट कर्तव्य पालन से विमुख कर ही कैसे सकता था। विचार कीजिए कि यदि दुर्गादास जी में यह गुण नहीं होता तो क्या वे धर्मत के युद्ध में अनेक घोड़ों को बदलकर भी मैदान में डटे रहते? क्या महाराजा जसवंतसिंहजी के देहांत के तुरन्त बाद जमरूद के थाने से लेकर दिल्ली में बनी परिस्थितियाँ कोई सामान्य संकट थी? वहाँ से जीवित बाहर निकलना और साथ ही अजीतसिंह को भी निकालना क्या कोई सामान्य बात थी?

ये संकट तो हम मान सकते हैं कि एक योद्धा के जीवन में आने वाले सामान्य संकट हैं, लेकिन उनके आगे के जीवन को देखें, जब मध्यकालीन भारत के क्रूरतम शासक से अपने सामान्य साधनों और थोड़े साधनों से मुकाबला करना, ऐसा युद्ध से भागने वाला व्यक्ति नहीं कर सकता। साथ ही एक मनोवैज्ञानिक समस्या जो उनके साथ थी, वह भी कोई सामान्य संकट नहीं था, कि वे एक राजा नहीं थे। उनके राजा नहीं होने के कारण उनको समय-समय पर विभिन्न कठिनाइयाँ झेलनी पड़ी। अजीतसिंह के प्रकट होने के बाद अनेक बार उन्हें मन मसोस कर रहना पड़ा और अंत में तो अपनी मातृभूमि तक को छोड़ना पड़ा, लेकिन इन सबके बावजूद उन्होंने संघर्ष से मुँह नहीं मोड़ा, अपने कर्तव्य पालन से विमुख नहीं हुए क्योंकि उनमें युद्ध से पलायन न करने का गुण था।

उनको वर्षों तक अपने परिवार से दूर रहना पड़ा, अपने परिवार जनों को छोड़ना पड़ा, अपने परिवार जनों को युद्ध में गंवाना पड़ा लेकिन फिर भी निरन्तर कर्तव्यरत रहे, यह उनके युद्ध से पलायन न करने की वृत्ति का ही फल था। अनेक बार असफलता मिली, जंगल-जंगल भटकना पड़ा, श्मशान की आग में रोटी सेक कर खानी पड़ी, मारवाड़ छोड़ना पड़ा, मेवाड़ छोड़ना पड़ा, मालवा को पार कर सुदूर उज्जैन में क्षिप्रा के किनारे अपनी देह त्यागनी पड़ी, लेकिन फिर भी कर्तव्य से च्युत नहीं हुए, यह उनके इसी युद्ध से पलायन न करने के गुण के कारण संभव हुआ।

मारवाड़ की स्वतंत्रता के इतने लम्बे व थका देने वाले संघर्ष में हर घटना के सूत्रधार होने के बावजूद मारवाड़ की स्वतंत्रता का उपयोग करने की अपेक्षा वे विरक्त की भाँति अपने कर्तव्य पथ पर डटे रहे। अन्तिम समय तक मारवाड़ के नये शासक से मिली उपेक्षा के बावजूद वे मारवाड़ के प्रति अपने कर्तव्य को नहीं भूले। यह उनकी इसी प्रवृत्ति का परिणाम था। यों तो यह गुण लगभग हर मध्यकालीन नायक में मौजूद था लेकिन दुर्गादास जी का तो पूरा जीवन ही कर्तव्य पालन में आने वाली प्रत्येक कठिनाई का सामना करते हुए, कर्तव्यरत रहने की कहानी है, इसलिए क्या लिखा जाए और क्या छोड़ा जाए। उनका पूरा जीवन युद्ध से पलायन न करने का पर्याय है।

(क्रमशः)

गतांक से आगे

भगवन्नाम की महिमा

– स्वामी यतीश्वरानन्द

जप की शक्ति :

मंत्र की शक्ति उच्चतम अधिकारियों में ही प्रकट होती है। अपनी देह त्यागने के कुछ दिन पूर्व एक दिन श्रीरामकृष्ण ने काशीपुर उद्यान-भवन में अपने शिष्य नरेन्द्र को ''राम'' मंत्र से दीक्षित किया। स्वभावत: महान् आत्मसंयम सम्पन्न नरेन्द्र में इससे आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ। इस बार उनकी भावावस्था हो गई और वे भगवान् का ''राम राम'' नाम उत्तेजित और उच्च स्वर में जपते हुए भवन का चक्कर लगाने लगे। उनकी बाह्य चेतना प्राय: लुप्त हो गई। और उन्होंने सारी रात इसी तरह बिताई। जब श्रीरामकृष्ण को इसकी सूचना दी गई, तो उन्होंने केवल इतना ही कहा :''उसे यों ही रहने दो। कुछ समय बाद वह सामान्य हो जाएगा।'' कुछ घण्टों बाद नरेन्द्र सामान्य हो गए।

प्रत्येक शब्द हमारे मन में उठ रहे किसी भाव अथवा इच्छा को व्यक्त करता है। मंत्र मानव की आध्यात्मिक स्पृहाओं का द्योतक है। जिस प्रकार बोला या सुना गया एक सामान्य शब्द हममें किसी भाव अथवा कामना विशेष को पैदा कर सकता है, उसी प्रकार मंत्र हममें प्रसुप्त आध्यात्मिक प्रवृत्तियों को जाग्रत कर सकता है। इन प्रसुप्त आध्यात्मिक प्रवृत्तियों की अभिव्यक्तियाँ किसी एक संस्कृति विशेष के लोगों में एक तरह की होती है अतएव प्रत्येक संस्कृति विशेष के लोगों के अपने विशिष्ट मंत्र या पवित्र शब्द प्रतीक होते हैं। विधिवत जप करने पर ये मंत्र उन आध्यात्मिक प्रवृत्तियों को जाग्रत कर देते हैं जो अधिकांश लोगों में अवतरित पड़ी रहती है। जप का उद्देश्य मानव की विस्मृत आध्यात्मिक प्रवृत्तियों को जगाना है। प्रत्येक साधक का एक इष्ट देवता, एक मंत्र और चेतना का एक निश्चित केन्द्र होना चाहिए। उसे सदा चेतना के इस केन्द्र को पकड़े रहना चाहिए।

जप कई प्रकार से किया जा सकता है। साधक जोर से उच्चारण करके मंत्र जप कर सकता है, कम से कम इतने जोर से कि वह स्वयं उसको सुन सके। यह वाचिक जप कहलाता है। अथवा वह होठों को हिलाते हुए मुँह ही मुँह में बोलकर जप कर सकता है। ऐसा जप उपांशु कहलाता है। तीसरी विधि बिना जिह्वा और होठों को हिलाए मन ही मन मंत्र का जप करना है। ऐसा ध्वनिरहित जप मानसिक कहलाता है। मानसिक जप निश्चित रूप से श्रेष्ठतम है, लेकिन जिन्हें वह कठिन लगे, वे अन्य दो विधियों से जप कर सकते हैं। अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि साधक को जप करते समय अपने चेतना के केन्द्र को पकड़े रखना चाहिए।

विश्व के धर्मों में जप का स्थान :

''अपने प्रभु भगवान का नाम व्यर्थ में न लो।'' बाईबिल के इस निर्देश और ईसा द्वारा व्यर्थ जप की निंदा की अनेक व्याख्याएँ हो सकती हैं। केथोलिक ईसाई लोग ''मेरी की स्तुति'' का जप करने के लिये जप-माला का उपयोग करते हैं, परन्तु सामान्यत: ईसाई धर्म में भगवन्नाम के जप के बदले अनुनयपूर्ण प्रार्थना पर अधिक जोर दिया गया है। लेकिन ग्रीक रूढ़िवादी ईसाई सम्प्रदाय का अवलोकन करने पर हम पाते हैं कि वहाँ हिन्दू धर्म के जप से मिलती-जुलती एक प्रकार की बार-बार की गई प्रार्थना को बहुत महत्त्व दिया गया है। मध्य युग के ग्रीक संत ''ईसामसीह की प्रार्थना'' नामक एक सरल सूत्र के जप की एक विधि विशेष में पारंगत हुए थे। ''द वे आफ पिलग्रिम' नामक लोकप्रिय पुस्तक में इस विधि का वर्णन निम्न प्रकार से किया गया है :

ईसा मसीह की आन्तरिक निरवच्छिन्न प्रार्थना का अर्थ निरंतर व्यवधान रहित ईसा के पवित्र नाम का होठों से, आत्मा में, हृदय में उच्चारण करना है। यह कार्य सदा-सर्वदा सभी स्थानों पर सभी कार्यों में रत रहते हुए, यहाँ तक कि निद्रा में भी उनके निरंतर सान्निध्य का

मानसिक कल्पना चित्र अंकित करते हुए तथा उनकी कृपा की याचना करते हुए किया जाना चाहिए। यह प्रार्थना इन शब्दों में की जानी चाहिए : ''प्रभु ईसा मसीह! मुझ पर दया करो।''

इस्लाम में सूफी सन्त अल्लाह अथवा अली के नाम के जप का प्रयोग आध्यात्मिक जागरण के लिये सदियों से करते रहे हैं। बारहवीं सदी के महान् मुसलमान धर्माचार्य अलगजाली के धर्म सम्प्रदाय में अनुयायियों को निम्न-निर्देश दिए जाते थे :

साधक एकान्त में अकेले बैठे और ध्यान रखे कि परमात्मा के अतिरिक्त और कोई विचार उसके मन में न आने पावे। इस तरह एकान्त में अकेले बैठकर जिह्वा से वह ''अल्लाह-अल्लाह'' निरंतर उच्चारण करना बन्द न करे, और मन को उसी में लगाए रखे। अन्त में एक ऐसी अवस्था आएगी जब जिह्वा का चलना बन्द हो जाएगा और ऐसा प्रतीत होगा, मानो शब्द उससे अपने आप प्रवाहित हो रहा है। वह इसमें उस समय तक लगा रहे जब तक जिह्वा का हिलना पूरी तरह बन्द न हो जाए, और वह पाये कि उसका मन उसी चिंतन में लगा हुआ है। वह इस प्रक्रिया में तब तक और लगा रहे जब तक शब्द का रूप और उसके अक्षर मन से दूर न हो जायें, और मन से मानो चिपका हुआ उससे अभिन्न रूप में केवल भाव रह जाये। इसके बाद केवल भगवान् उसके समक्ष जो प्रकट करेंगे, उसके लिये प्रतीक्षा करने के सिवाय और कुछ करणीय नहीं रहता। इस पद्धति का अनुसरण करने पर परम सत्य की ज्योति निश्चित रूप से उसके हृदय में प्रकाशित होगी।

बौद्ध धर्म में नैतिक जीवन और ध्यान को अधिक महत्त्व दिया गया है। लेकिन महायान बौद्ध शाखा के कुछ सम्प्रदायों में विज्ञान के उपाय के रूप में भगवन्नाम के जप का विधान किया गया है। जापान के 'शिन्' नामक सर्वाधिक लोकप्रिय बौद्ध-सम्प्रदाय में साधक ''नमो अमिताभ बुद्धाय:'' (जो जापानी भाषा में 'नमू-अमिडा-बुत्सुं' होता है) मंत्र का निरंतर जप करता है। सुखावती व्यूह सूत्र की टीका में निम्न अंश है :

अमिडा के नाम का पूरे मन से चलते-फिरते, उठते-बैठते, सोते केवल जप करते रहो, और एक क्षण के लिये भी उसे बन्द न करो। यह कार्य निश्चित रूप से मोक्ष तक ले जाता है, क्योंकि यह अमिडा बुद्ध की मूल प्रतिज्ञा के अनुरूप है।

सूंगम-सूत्र नामक एक अन्य शास्त्र में कहा गया है :

(अमिताभ बुद्ध के नाम के जप की) साधना का लाभ यह है.....जो भी अमिताभ बुद्ध के नाम का वर्तमान अथवा भविष्य में जप करेगा, वह अमिताभ बुद्ध का अवश्य दर्शन करेगा और उससे कभी पृथक् नहीं होगा। जिस प्रकार इत्र के निर्माता का सहवास करने वाला उसी सुगन्ध से ओतप्रोत हो जाता है, उसी प्रकार अमिताभ के इस संग से वह अमिताभ की करुणा से सुवासित हो जाएगा और बिना अन्य किसी उपाय के प्रबुद्ध हो जाएगा।

हिन्दू धर्म में जप का स्थान :

हिन्दू धर्म का अवलोकन करने पर हम पाते हैं कि जप को किसी न किसी रूप में यहाँ बहुत महत्त्व दिया गया है। दक्षिण भारत के शैव और वैष्णव संतों तथा उत्तर भारत के महान् सन्तों ने भगवन्नाम के सतत जप पर बहुत बल दिया है। सन्त तुकाराम के एक भजन का भाव यह है :

प्रभु, जब तुम्हारा नाम मेरे मन में उदित हो, तो मेरा आपके प्रति प्रेम प्रज्ज्वलित हो उठे, और मैं आनन्द से मूक हो जाऊँ। मेरे नेत्रों से आनन्दाश्रु बहने लगें, अंग थिरकने लगें और मेरे रोम-रोम में आपका प्रेम व्याप्त हो जाए। मैं आपके आनन्दमय गुण-गान में लगा रहूँ, तथा दिन-रात अहर्निश आपके नाम का जप करता हूँ। तुका कहता है कि यही सर्वश्रेष्ठ कार्य है और संतों के चरणों में परम शान्ति मिलती है।

गुरुनानक और उनके अनुयायियों ने भगवन्नाम को बहुत महत्त्व दिया है। भगवन्नाम का जप नानक द्वारा उपदिष्ट एक महत्त्वपूर्ण साधना है। चैतन्य महाप्रभु ने बंगाल में सभी वर्ग के लोगों में जप का प्रचार-प्रसार किया। ''नामे रुची, जीवे दया, वैष्णव सेवा'' (भगवन्नाम

में रुचि, जीवों पर दया, वैष्णवों की सेवा) यह त्रिविध विधान उनके पंथ का आधार है। यौवन में वे अपनी प्रखर बुद्धि और पाण्डित्य के लिये विख्यात थे। लेकिन वे सर्वस्व का त्याग कर भगवत्प्रेम में दीवाने हो गये। उनका कथन है :

चेतो दर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं
श्रेय: कैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम्।
स्वानन्दाम्बुधिवर्द्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्वप्नं परं विजयते श्रीकृष्ण संकीर्तनम्।।

अर्थात् ''श्रीकृष्ण के नाम-संकीर्तन की जय हो, जो चित्तरूपी दर्पण को साफ करता है, संसार रूपी महान दावानल को बुझाता है, जो श्रेयरूपी श्वेतकमल पर चन्द्रमा की ज्योत्सना के समान है, जो आत्मविद्या रूपी वधु का जीवन है, जो आनन्दसागर की वृद्धि करता है, जो प्रतिपद पर पूर्णामृत के समान सुस्वादु है तथा जो समस्त प्राणियों के लिये शीतल स्नान-स्वरूप है।''

श्रीरामकृष्ण ने कहा है :

जप करने का अर्थ है, निर्जन में चुपचाप उनका नाम लेना। एकाग्र होकर उनका नाम जप करते रहने से उनके रूप के भी दर्शन होते हैं और उनका साक्षात्कार भी होता है। जंजीर से बँधी लकड़ी गंगा में जैसे डुबोई हुई हो और जंजीर का दूसरा छोर तट पर बँधा हुआ हो। जंजीर की एक-एक कड़ी पकड़ कर कुछ दूर बढ़कर फिर पानी में डुबकी मार कर उसी प्रकार और आगे बढ़ते हुए लोग लकड़ी को अवश्य छू सकते हैं। इसी तरह जप करते हुए मग्न हो जाने पर धीरे-धीरे ईश्वर के दर्शन होते हैं।

माँ सारदा अपने साधनाकाल में लगभग एक लाख जप प्रतिदिन किया करती थी। उन्होंने अपने जीवन से भगवन्नाम की शक्ति को प्रदर्शित किया है। जप और ध्यान की सहायता से उनका देहात्मबोध नष्ट हो जाता था, और वे अतिचेतन अनुभूतियों के स्तर पर आरूढ़ हो जाती थीं। अपने उपदेशों में उन्होंने बार-बार जप के महत्त्व पर बल दिया है, जो एक शिष्य के साथ उनके निम्नोक्त वार्तालाप से प्रकट होता है :

शिष्य : माँ! कुण्डलिनी जागरण के बिना कुछ नहीं होने का।

माँ सारदा : हाँ बेटा! कुण्डलिनी धीरे-धीरे जाग्रत होगी। भगवन्नाम के जप से तुम सब अनुभव कर सकोगे। मन शान्त न भी हो, तो भी एक स्थान पर बैठकर तुम एक लाख जप कर सकते हो। कुण्डलिनी जागरण से पूर्व अनाहत-ध्वनि सुनायी पड़ती है। लेकिन माँ जगदम्बा की कृपा के बिना कुछ भी नहीं होता।

कोयालपाड़ा में एक शिष्य ने माँ सारदा से कहा : ''माँ! मन बड़ा चंचल है। मैं उसे किसी भी प्रकार स्थिर नहीं कर पा रहा हूँ।'' माँ ने उत्तर दिया : ''जैसे वायु बादलों को हटा देती है, वैसे ही भगवन्नाम सांसारिकता में मेघों को दूर कर देता है।''

पन्द्रह अथवा बीस हजार जप प्रतिदिन करने पर मन शान्त होगा। यह सत्य है। अरे कृष्णलाल, मैंने स्वयं इसका अनुभव किया है। उन्हें पहले जप करने दो, उसके बाद यदि वे असफल हों, तो मुझे शिकायत कर सकते हैं। थोड़ी भक्ति के साथ जप करना चाहिए, पर लोग ऐसा नहीं करते। वे करेंगे कुछ नहीं और केवल शिकायत करेंगे, ''मैं सफल क्यों नहीं होता?''

प्रारब्धकर्म का फल भोगना पड़ता है। इससे कोई बच नहीं सकता। लेकिन जप अथवा भगवन्नाम की आवृत्ति से उसकी तीव्रता कम हो जाती है। जैसे किसी का पैर कटने वाला हो, तो उसके बदले उसके पैर में केवल काँटा चुभकर रह जाता है।

श्रीरामकृष्ण के प्रमुख शिष्यों में से एक स्वामी ब्रह्मानन्दजी ने जप को बहुत महत्त्व दिया है। एक शिष्य ने एक बार उनसे पूछा : ''महाराज! कुण्डलिनी को कैसे जगाया जा सकता है?'' महाराज ने उत्तर दिया : ''कुछ लोगों के अनुसार उसको जगाने के विशेष उपाय हैं। लेकिन मैं समझता हूँ कि जप और ध्यान उसके जागरण के सर्वश्रेष्ठ उपाय हैं। जप की साधना हमारे आधुनिक युग के लिये विशेष रूप से उपयुक्त है।''

एक अन्य अवसर पर उन्होंने कहा है :

जप-जप-जप। कार्य करते समय भी जप करो। भगवान के नाम का चक्र अपनी समस्त क्रियाओं के बीच चलने दो। यदि ऐसा कर सको, तो हृदय की समस्त ज्वाला शान्त हो जाएगी। भगवन्नाम का आश्रय लेकर बहुत से पापी शुद्ध, मुक्त और दिव्य हो गए हैं। भगवान और उनके नाम में प्रबल विश्वास रखो, जानो कि वे दोनों भिन्न नहीं हैं।

इतने उद्धरण देने का उद्देश्य क्या है? ये क्या प्रदर्शित करते हैं? सिद्ध महापुरुषों की ये वाणियाँ बताती हैं कि भगवन्नाम में महान शक्ति है। इस शक्ति में विश्वास होना चाहिए। लाखों लोगों ने जप की सहायता से आध्यात्मिक उन्नति की है। यह एक महत्त्वपूर्ण साधना-पद्धति है। भगवन्नाम की शक्ति आगे या पीछे साधक में अवश्य प्रकट होगी। भगवन्नाम मन में उठ रहे अशुभ विचारों को निरस्त करता है। भगवन्नाम के निरंतर जप के बिना पूर्ण पवित्र जीवन यापन करना असम्भव है। यह मैं अपने स्वयं के जीवन के अनुभव से कह रहा हूँ। अतएव हमें निरंतर भगवन्नाम का जप करना चाहिए। हमारे देह और मन पवित्र और आध्यात्मिक स्पन्दनों से स्पन्दित होते रहें। नाम हमारी बाधाओं को दूर करे, और हमारी आत्मा का परमात्मा के साथ मिलन करे। हम आत्मा के उस संगीत को गाना सीखें जो आत्मा को उन्नत बनाता है और परमात्मा के साथ संयुक्त करता है।

(क्रमशः)

पृष्ठ 9 का शेष

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

करते पूज्य श्री तनसिंहजी ने कहा-''तुम्हारे कार्यकलापों से जब मैं पहली ही बार कुरुक्षेत्र में परिचित हुआ, तभी मैं उससे प्रभावित हो गया था। शायद उसका कारण यह हो सकता है कि तुम जिनकी यशोगाथाओं पर अपना भव्य आश्रम बना रहे थे, वे यशस्वी महापुरुष हम क्षत्रियों की ही परम्परा में थे। तुम्हारे गायनों का एक-एक भाव, तुम्हारे बौद्धिकों का एक-एक शब्द और तुम्हारे कार्यों का एक-एक अंश, जैसे हमारे पूर्वजों की आत्माएँ बोल रही हैं उनमें। इसलिए कई बार तुम्हारे इन कार्यक्रमों में मेरी आँखों से आँसुओं की लड़ियाँ बहने लगी थी।''

पूज्य श्री तनसिंहजी ने कहा-''गुरुजी! तुम देश प्रेम की बात करते हो, देश भक्ति की बात करते हो, मुझे भी इस देश की धरती से, इसकी नदियों और पहाड़ों से, इसके तीर्थों और मंदिरों से, इसकी धर्म, संस्कृति और भाषा से प्रगाढ प्रेम है। इस देश से मुझे इसलिए प्रेम है कि इसी देश की स्वतंत्रता के लिये हम क्षत्रियों (हमारे पूर्वजों) ने जौहर और शाके कर दिखाये, वर्षों तक जंगलों और पहाड़ों में भटके, पीढियों तक बलिदान किये और मरने के बाद तक भी लड़ते रहे। इस धरती से इसलिये प्रेम है कि इसके साथ हमारा, हमारे पूर्वजों का पवित्र रागात्मक सम्बन्ध है। इसका शताब्दियों तक भोग करने के कारण यह पत्नी रूप में और पोषण प्राप्त करने के कारण यही माँ के रूप में आदरणीय भी है। इसकी नदियों और पहाड़ों से इसलिए प्रेम है कि वहीं हमारे पूर्वजों ने अचिन्त्य खेल खेले हैं। वहाँ की चप्पा-चप्पा भूमि पर मेरे पूर्वजों के पदचिह्न अभी तक मिटे नहीं हैं। इसके तीर्थों और मंदिरों से इसलिए प्रेम है कि उन्हीं की मर्यादा रक्षा के लिये मेरे पूर्वजों ने असंख्य बलिदान किये। गठ-जोड़ों को छोड़कर उनकी रक्षा के लिये मेरे पूर्वजों (क्षत्रियों) ने अद्भुत परम्परा का निर्माण किया। इसकी धर्म, संस्कृति और भाषा से इसलिए प्रेम है कि क्षत्रियों ने ही धर्म का व्यावहारिक आचरण किया, संस्कृति का भव्य रूप क्षत्रियों की परम्परा से ही निखर कर स्तुत्य बन सका और भाषा उन क्षत्रियों की गाथा गाते-गाते स्वयं महान हो गई। मैं पूर्ण रूप से राष्ट्रवादी हूँ, क्योंकि मैं इस देश का ही क्षत्रिय समाज का हूँ, जिसमें चौबीस बार भगवान ने अवतार ग्रहण किए और इतनी ही बार उसने क्षत्रियों का मस्तक गौरव से ऊँचा किया।''

(क्रमशः)

बोरू की सती

– स्वामी सच्चिदानन्द जी

भारतीय संस्कृति में कितने ही सही-गलत रीति-रिवाज समय-समय पर आये और समाप्त भी हो गये। उनमें से एक रिवाज था सती होने का। सती प्रथा के दो रूप हैं-एक तो मृत पति के पीछे उसकी विधवा हुई पत्नी को सती होना ही चाहिए। स्त्री यदि सती होना नहीं चाहती है तो जबरदस्ती से उसको पति की जलती चिता में चढाया जाता और सती बना देते। यह प्रथा निन्दनीय व अमानवीय थी। भारत में ब्रिटिश शासन के समय कानून बनाकर इस प्रथा को समाप्त कर दिया गया, जो सर्वथा उचित था।

सती प्रथा का दूसरा रूप यह था कि पति-पत्नी या प्रेमी-प्रेमिका में से पुरुष की स्वाभाविक या अस्वाभाविक मृत्यु हो जाए तो पीछे जीवन्त पत्नी या प्रेमिका मृतक का वियोग सहन न कर सके, कोई रोक नहीं सकता और वह पति की मृत्यु को समर्पित हो जाती है। पत्नी का जीवन तो वैसे भी समर्पित होता है। यह समर्पण केवल जीवन तक ही मर्यादित न रहकर यदि मृत्यु तक लम्बा खींचा जाय तो यह महा समर्पण कहलाता है। ऐसा समर्पण प्रथा नहीं कहलाता। यह एक अनूठी घटना कहलाती है जो क्वचित ही घटित होती है। ऐसी एक घटना का चित्रण करने का यहाँ यत्न किया जा रहा है।

भारत में शौर्य कौमानुसार माना जाता है। क्षत्रिय, राजपूत, काठी आदि शौर्य के लिये सुप्रसिद्ध हैं। करुणा यह है कि इन जातियों में परस्पर संघ (एकता) नहीं होता। छोटे-बड़े संघर्ष होते ही रहते हैं। अर्थात् ये जोड़ का नहीं वरन बाकी का जीवन जीते हैं। ऐसे झगड़े किसान या मजदूर वर्ग में शायद ही होते हैं। कहना ही चाहिए कि ज्यादातर युद्ध ऐसे किसी न किसी प्रकार की कलह के कारण से ही होते हैं।

गुजरात के अहमदाबाद जिले के भाल प्रदेश (धन्धुका, धोलेरा, धोलका क्षेत्र) में बोरू गाँव के ठाकुर भारोजी को समाचार मिले कि भडली (पोरबन्दर के पास का गाँव) गाँव की काठियाणियाँ (काठी महिलाएँ) सयाणी देवी के दर्शन को आई हैं। भारोजी बाघेला राजपूत। उनको भडली के काठी राजपूतों से वैर था। इसलिए सामने से चलकर आये शिकार (अवसर) का लाभ लेने को तैयार हो गये। वैसे राजपूती नेकी-टेकी ऐसी होती थी कि पुरुषों से चाहे कितना ही वैर हो, शत्रु-स्त्री का स्पर्श भी नहीं किया जाता। मगर मनुष्य जब वैर में अंधा हो जाता है तब सारी नेकी-टेकी भूल जाता है। वैर इसलिए हो गया था कि काठी लोग राजपूतों के परिवार की गाड़ियाँ लूट लेते थे। राजपूतों के लिये यह असह्य था और आज तो काठियों के सरदार भोज खाचर की पत्नी स्वयं सयाणी देवी का दर्शन करने को आई थी। ऐसा मौका बार-बार थोड़ा ही मिलता है।

भारोजी बाघेला घोड़े पर चढे। काठियाणियों को बंधक बना लेने की नीयत से उन्होंने सयाणी माता के मंदिर की ओर घोड़ा दौड़ाया। मगर काठियाणियों को समाचार मिल गया था कि भारोजी उनको बंधक बना लेने को आ रहा है। यद्यपि उनको सावधान तो कर दिया गया था कि मत जाओ जोखिम है, मगर स्त्रियाँ मानी नहीं और हठ करके आई। अब पश्चाताप का समय आया। नाटी दृष्टि वाली महिलाएँ पति की आज्ञा को न मानकर बार-बार पछताती रहती हैं।

मगर काठियाणियाँ भयभीत नहीं हुई। हिम्मत करके सब गाड़ियों में बैठ गई और सामने दिखाई दे रहे उतेलिया गाँव की ओर गाड़ियाँ हांक ली। उतेलिया में भारोजी ठाकुर के परिवार के लोग रहते थे। वे भी राजपूत। मगर काठियाणियों को भरोसा था कि उतेलिया का बारोजी बाघेला हमारी रक्षा जरूर करेगा। गाड़ियाँ राजगढ में पहुँच गई। बारोजी को परिस्थिति समझाई। शरण माँगी। बारोजी तुरन्त तैयार हो गया और भाला-

तलवार लेकर अपने साथियों के साथ दरवाजे पर आकर खड़ा हो गया। किसकी ताकत है कि काठियाणियों को छू भी सके? ***राजपूत तुरन्त निश्चय कर लेगा। बणिया सोच-विचार करके देर से निश्चय करेगा। उसके अधिकतर निर्णय गोल-गोल ही होते हैं।***

थोड़ी ही देर में भारोजी आ गए। बारोजी और भारोजी दोनों ही बाघेला राजपूत। पर इस वक्त दोनों आमने-सामने हो गए। भारोजी बारोजी का मिजाज पहचान गये। तुरन्त लौट गये। काठियाणियाँ सुरक्षित हो गई।

मगर काठी बैर नहीं भूले। काठियाणियाँ तो भडली पहुँच गई थी मगर भोज खाचर का डंक जग उठा। अपनी महिलाओं पर हाथ उठाने का प्रयास करने वाले भारोजी को पाठ पढाने को वह तैयार हो गया। ***पति चाहे कितना ही निर्बल-कायर हो पर पत्नी का अपमान सह नहीं सकेगा। रामायण व महाभारत स्त्रियों के ही होते हैं, पुरुषों के नहीं।***

भोज खाचर काठियों का दल लेकर बोरू पर चढ आया। भारोजी भी बाघेला राजपूतों को लेकर सामने आ डटे। दोनों के बीच लड़ाई हुई। बोरू का मैदान खून से रंग गया। ***राजपूतों का खून जितना परस्पर के युद्ध में बहा है, उतना ही खैबर-बोलन घाटी के पास नहीं बहा है। यदि वहाँ बहा होता तो महमूद गजनवी सोमनाथ तक आ ही नहीं सकता था।***

युद्ध में भारोजी काम आ गये। युद्ध में जो शहीद होता है उसी की क्षत्रिय की पहचान है। मगर भोज खाचर जाते वक्त भारोजी का मस्तक काट कर साथ ले गया। वह भडली की सींव में पत्नी का अपमान करने वाले शत्रु का मस्तक लटका कर अपनी धाक का परिचय देना चाहता था। झगड़े की जगह समाधान कर लेना जो जानता है उसको बनिया कहते हैं। झगड़े की आग में घी डालकर उसको जलती रखे ऐसा राजपूत होता है।

लड़ाई तो खत्म हो गई। देखते ही देखते मैदान में लाशों का ढेर लग गया था। मगर भारोजी की पत्नी को सत चढ आया। लाखों प्रयत्न करने पर भी वह शान्त नहीं हुई। पूरा शरीर उसका काँप रहा था।

साधारण समय में मर्यादा का चुस्त पालन करने वाली राजपूतानी आज अपने बाल खुल्ले रखकर बाहर आ गई थी। उसके चेहरे पर अपूर्व तेज चमक रहा था। पति से फासला बढता जा रहा था। जिसके साथ जीवन बिताया था, उसकी मृत्यु के बाद उसके साथ ही स्वर्ग जाने को वह उतावली हो रही थी। चिता तैयार हो गई मगर पति का मस्तक कहाँ? मस्तक तो भोज खाचर ले गया था। अब क्या करे? सब व्याकुल हो गए। ऐसे समय एक चारण युवा आगे आया और बोला-'चिंता मत करो! मैं भारोजी का मस्तक लेकर आ रहा हूँ।' कह कर चारण सीधा भोज खाचर की कचहरी में पहुँचा।

अनजान होकर भोज खाचर की प्रशंसा के दोहे गाने लगा। उस समय में चारणों (गढवी) का बहुत सम्मान होता था। अच्छी सी भेंट दी जाती थी। वीरत्व यश भूखा होता है। यश गाने वाला मिल जाये तो मस्तक भी भेंट में दे दे। भोज खाचर प्रसन्न हो गया और जो मांगेगा वह दूंगा, ऐसा वचन दिया। चारण ने भारोजी का मस्तक मांगा। भोज खाचर चारण की चतुराई समझ गया। तुरन्त भारोजी का मस्तक दे दिया। कुछ खा-पीकर जाने का आग्रह किया, मगर चारण तो अन्न जल हराम करके गाँव से निकल गया।

बोरू पहुँच गया। चिता पर बैठी राजपूतानी पति के मस्तक की राह ही देख रही थी। चारण ने वादा निभाया। मस्तक रानी की गोद में रख दिया। गगन भेदी आवाज हुई-'रानी सती की जय' सब शान्त हो गया। बोरू गाँव के बाहर सींव पर दर्शन करने को जरूर जाना। बाघेली रानी आज भी पूजी जाती है। जिसकी पूजा लोग करते हैं, वह सदा अमर होता है।

✻

व्यक्ति के उत्थान से देश और संस्थानों का भी उत्थान अवश्य होता है।

- स्वामी विवेकानन्द

अर्जुन और गीता

– आचार्य विनोबा भावे

कुछ लोगों का ख्याल है कि गीता का आरम्भ दूसरे अध्याय से समझना चाहिए। दूसरे अध्याय के ग्यारहवें श्लोक से प्रत्यक्ष उपदेश का आरम्भ होता है, तो वहीं से आरम्भ क्यों न समझा जाये? एक व्यक्ति ने मुझसे कहा–''भगवान ने अक्षरों में अकार को ईश्वरीय विभूति बताया है। इधर ***अशोच्यानन्वशोचस्त्वम्*** के आरम्भ में अनायास 'अकार' आ गया है। अत: वहीं से आरम्भ मान लेना चाहिए।'' इस दलील को हम छोड़ दें तो भी इसमें शंका नहीं है कि वहाँ से आरम्भ मानना अनेक दृष्टियों से उचित ही है। फिर भी उससे पहले के प्रास्ताविक भाग का भी महत्त्व है ही। अर्जुन किस भूमिका पर स्थित है, किस बात का प्रतिपादन करने के लिये गीता की प्रवृत्ति हुई है, यह इस प्रास्ताविक कथा भाग के बिना अच्छी तरह समझ में नहीं आ सकता।

कुछ लोग कहते है कि अर्जुन का क्लैब्य दूर करके उसे युद्ध में प्रवृत्त करने के लिये गीता कही गयी है। उनके मत में गीता केवल कर्मयोग ही नहीं बताती, बल्कि युद्ध-योग का भी प्रतिपादन करती है। पर जरा विचार करने से इस कथन की भूल हमें दीख पड़ेगी। अठारह अक्षौहिणी सेना लड़ने के लिये तैयार थी। तो क्या हम यह कहेंगे कि सारी गीता सुनाकर भगवान ने अर्जुन को उस सेना की योग्यता का बनाया? अर्जुन घबराया, न कि वह सेना? तो क्या सेना की योजना अर्जुन से अधिक थी? यह बात कल्पना में भी नहीं आ सकती। अर्जुन, जो लड़ाई से परावृत्त हो रहा था, सो भय के कारण नहीं। सैंकड़ों लड़ाईयों में अपना जौहर दिखाने वाला वह महावीर था। उत्तर-गो-ग्रहण के समय उसने अकेले ही भीष्म, द्रौण और कर्ण के दांत खट्टे कर दिये थे। सदा विजय प्राप्त करने वाला और सब नरों में एक ही सच्चा नर, ऐसी उसकी ख्याति थी। वीरवृत्ति उसके रोम-रोम में भरी थी। अर्जुन को उकसाने के लिये, उत्तेजित करने के लिये 'क्लैब्य' का आरोप तो कृष्ण ने भी करके देख लिया, परन्तु उनका वह तीर बेकार गया और फिर उन्हें दूसरे ही मुद्दों को लेकर ज्ञान-विज्ञान संबंधी व्याख्यान देने पड़े। तो यह निश्चित है कि महज क्लैब्य-निरसन जैसा सरल तात्पर्य गीता का नहीं है।

कुछ दूसरे लोग कहते हैं कि अर्जुन की अहिंसा-वृत्ति को दूर करके उसे युद्ध में प्रवृत्त करने के लिये गीता कही गयी है। मेरी दृष्टि से यह कथन भी ठीक नहीं है। यह देखने के लिये पहले हमें अर्जुन की भूमिका बारीकी से समझनी चाहिए। इसके लिये पहले अध्याय से और दूसरे अध्याय में पहुँची हुई उसकी खाड़ी से हमें बहुत सहायता मिलेगी।

अर्जुन, जो समर-भूमि में खड़ा हुआ, तो कृत-निश्चय होकर और कर्तव्य भाव से। क्षात्रवृत्ति उसके स्वभाव में थी। युद्ध को टालने का भरसक प्रयत्न किया जा चुका था, फिर भी वह टला नहीं था। कम-से-कम माँग का प्रस्ताव और श्रीकृष्ण जैसे की मध्यस्थता, दोनों बातें बेकार हो चुकी थीं।। ऐसी स्थिति में अनेक देशों के राजाओं को एकत्र करके और श्रीकृष्ण से अपना सारथ्य स्वीकृत कराकर वह रणांगण में खड़ा है और वीरवृत्ति के उत्साह के साथ श्रीकृष्ण से कहता है–''दोनों सेनाओं के बीच मेरा रथ खड़ा कीजिए, जिससे मैं एक बार उन लोगों के चेहरे तो देख लूँ, जो मुझसे लड़ने के लिये तैयार होकर आये हैं।'' कृष्ण ऐसा ही करते हैं। अर्जुन चारों ओर एक निगाह डालता है, तो उसे क्या दिखायी देता है? दोनों ओर अपने ही नाते-रिश्तेदारों, सगे-संबंधियों का जबरदस्त जमघट। वह देखता है कि दादा, बाप, बेटे, पोते, आप्त-स्वजन-संबंधियों की चार पीढ़ियाँ मरने-मारने के अन्तिम निश्चय से वहाँ एकत्र हुई हैं। यह बात नहीं कि इससे पहले उसे इन बातों की कल्पना न हो, परन्तु प्रत्यक्ष दर्शन का कुछ अलग ही प्रभाव पड़ता है। उस सारे स्वजन समूह को देखकर उसके हृदय में एक उथल-पुथल मचती है। उसे बहुत बुरा लगता है। आज तक उसने अनेक युद्धों में असंख्य वीरों का संहार किया था। उस समय उसे बुरा नहीं लगा था, उसका

गांडीव हाथ से गिर नहीं पड़ा था, शरीर में कंप नहीं हुआ था, उसकी आँखें गीली नहीं हुई थीं। तो फिर इसी समय ऐसा क्यों हुआ? क्या अशोक की तरह उसके मन में अहिंसा-वृत्ति का उदय हुआ था? नहीं, यह तो केवल स्वजनासक्ति थी। इस समय भी यदि गुरु, बंधु और आप्त सामने न होते, तो उसने शत्रुओं के मुंड गेंद की तरह उड़ा दिये होते। परन्तु इस आसक्तिजनित मोह ने उसकी कर्त्तव्यनिष्ठा को ग्रस लिया और तब उसे तत्त्वज्ञान याद आया। कर्त्तव्यनिष्ठ मनुष्य को मोहग्रस्त होने पर भी नग्न-खुल्लमखुल्ला-कर्त्तव्यच्युति सहन नहीं होती। वह कोई सद्विचार उसे पहनाता है। यही हाल अर्जुन का हुआ। अब वह झूठ-मूठ प्रतिपादन करने लगा कि युद्ध ही वास्तव में एक पाप है। युद्ध से कुलक्षय होगा, धर्म का लोप होगा, स्वैराचार मचेगा, व्यभिचारवाद फैलेगा, अकाल आ पड़ेगा, समाज पर तरह-तरह के संकट आयेंगे, आदि अनेक दलीलें देकर वह कृष्ण को समझाने लगा।

यहाँ मुझे एक न्यायाधीश का किस्सा याद आता है। एक न्यायाधीश था। उसने सैंकड़ों अपराधियों को फांसी की सजा दी थी। परन्तु एक दिन खुद उसी का लड़का खून के जुर्म में उसके सामने पेश किया गया। बेटे पर खून का जुर्म साबित हुआ और उसे फांसी की सजा देने की नौबत न्यायाधीश पर आ गयी। तब वह हिचकने लगा। वह बुद्धिवाद बघारने लगा-''फांसी की सजा बड़ी अमानुषी है। ऐसी सजा देना मनुष्य को शोभा नहीं देता। इससे अपराधी के सुधरने की आशा नष्ट हो जाती है। खून करने वाले ने भावना के आवेश में, खून कर डाला। परन्तु उसकी आँखों पर से जूनून उतर जाने पर उस व्यक्ति को गंभीरतापूर्वक फांसी के तख्ते पर चढ़ाकर मार डालना समाज की मनुष्यता के लिये बड़ी लज्जा की बात है, बड़ा कलंक है''- आदि दलीलें वह देने लगा। यदि अपना लड़का सामने न आया होता, तो जज साहब बेखट के जिन्दगी भर फांसी की सजा देते रहते। किन्तु वे अपने लड़के के ममत्व के कारण ऐसी बातें करने लगे। उनकी वह बात आंतरिक नहीं थी। वह आसक्तिजनित थी। 'यह मेरा लड़का है' इस ममत्व में से वह वाङ्मय निकला था।

अर्जुन की गति भी इस न्यायाधीश की तरह हुई। उसने जो दलीलें दी थीं, वे गलत नहीं थीं। पिछले महायुद्ध के ठीक यही परिणाम दुनिया ने प्रत्यक्ष देखे हैं। परन्तु सोचने की बात इतनी ही है कि वह अर्जुन का तत्त्वज्ञान (दर्शन) नहीं था, कोरा प्रज्ञावाद था। कृष्ण इसे जानते थे। इसलिए उन्होंने उस पर जरा भी ध्यान न देकर सीधा उसके मोह-नाश का उपाय शुरू किया। अर्जुन यदि सचमुच अहिंसावादी हो गया होता, तो उसे किसी ने कितना ही अवांतर ज्ञान-विज्ञान बताया होता, तो भी असली बात का जवाब मिले बिना उसका समाधान न हुआ होता। परन्तु सारी गीता में इस मुद्दे का कहीं भी जवाब नहीं दिया है, फिर भी अर्जुन का समाधान हुआ है। यह सब कहने का अर्थ इतना ही है कि अर्जुन की अहिंसा-वृत्ति नहीं थी, वह युद्ध प्रवृत्त ही था। युद्ध उसकी दृष्टि से उसका स्वभाव-प्राप्त और अपरिहार्य रूप से निश्चित कर्त्तव्य था। उसे वह मोह के वश होकर टालना चाहता था और गीता का मुख्यत: इस मोह पर ही गदाप्रहार है।

गीता का प्रयोजन :
स्वधर्म-विरोधी मोह का निरसन

अर्जुन अहिंसा की ही नहीं, संन्यास की भी भाषा बोलने लगा। वह कहता है-''इस रक्त-लांछित क्षात्र-धर्म से संन्यास ही अच्छा है।'' परन्तु क्या वह अर्जुन का स्वधर्म था? उसकी वह वृत्ति थी क्या? अर्जुन संन्यासी का वेष तो बड़े मजे में बना सकता था, पर वैसी वृत्ति कैसे ला सकता था? संन्यास के नाम पर यदि वह जंगल में जाकर रहता, तो वहाँ हिरन मारना शुरू कर देता। अत: भगवान ने साफ ही कहा-''अर्जुन, तू जो यह कह रहा है कि मैं लडूंगा नहीं, वह तेरा भ्रम है। आज तक जो तेरा स्वभाव बना हुआ है, वह तुझे लड़ाये बिना रहेगा नहीं।''

अर्जुन को स्वधर्म विगुण मालूम होने लगा। परन्तु स्वधर्म कितना ही विगुण हो, तो भी उसी में रहकर मनुष्य को अपना विकास कर लेना चाहिए, क्योंकि उसमें रहने से ही विकास हो सकता है। इसमें अभिमान का कोई प्रश्न नहीं है। यह तो विकास का सूत्र है। स्वधर्म ऐसी वस्तु नहीं है कि जिसे बड़ा समझकर ग्रहण करें और छोटा

समझकर छोड़ दें। वस्तुत: वह न बड़ा होता है, न छोटा। वह हमारे नाप का होता है। ***श्रेयान् स्वधर्मो विगुण:*** - इस गीता-वचन में 'धर्म' शब्द का अर्थ हिन्दू-धर्म, इस्लाम-धर्म, ईसाई-धर्म आदि जैसा नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति का अपना भिन्न-भिन्न धर्म है। मेरे सामने अगर यहाँ जो दो सौ व्यक्ति मौजूद हैं, उनके दो सौ धर्म हैं। मेरा भी धर्म जो दस वर्ष पहले था, वह आज नहीं है। आज का धर्म दस वर्ष बाद टिकेगा नहीं। चिंतन और अनुभव से जैसे-जैसे वृत्तियाँ बदलती जाती हैं, वैसे-वैसे पहले का धर्म छूटता जाता है और नवीन धर्म प्राप्त होता जाता है। हठ पकड़कर कुछ भी नहीं करना है।

दूसरे का धर्म भले ही श्रेष्ठ मालूम हो, उसे ग्रहण करने में मेरा कल्याण नहीं है। सूर्य का प्रकाश मुझे प्रिय है। उस प्रकाश से मैं बढ़ता हूँ। सूर्य मेरे लिये वंदनीय भी है। परन्तु इसलिए यदि मैं पृथ्वी पर रहना छोड़कर उसके पास जाना चाहूंगा, तो जलकर खाक हो जाऊँगा। इसके विपरीत भले ही पृथ्वी पर रहना विगुण हो, सूर्य के सामने पृथ्वी बिल्कुल तुच्छ हो, स्वयंप्रकाशी न हो, तो भी जब तक सूर्य का तेज सहन करने का सामर्थ्य मुझमें नहीं है, तब तक सूर्य से दूर पृथ्वी पर रहकर ही मुझे अपना विकास कर लेना होगा। मछली से यदि कोई कहे कि 'पानी से दूध कीमती है, तुम दूध में रहो' तो क्या मछली उसे मंजूर करेगी? मछली तो पानी में ही जी सकती है, दूध में मर जायेगी।

दूसरे का धर्म सरल मालूम हो, तो भी उसे स्वीकार नहीं करना चाहिए। बहुत बार सरलता आभासमात्र ही होती है। घर-गृहस्थी में बाल-बच्चों की ठीक संभाल नहीं कर पाता, इसलिए ऊबकर यदि कोई गृहस्थ संन्यास ले ले, तो वह ढोंग होगा और भारी भी पड़ेगा। मौका पाते ही उसकी वासनाएँ जोर पकड़ेंगी। संसार का बोझ उठाया नहीं जाता, इसलिए जंगल में जाने वाला पहले वहाँ छोटी-सी कुटिया बनायेगा। फिर उसकी रक्षा के लिये बाड़ लगायेगा। ऐसा करते-करते उस पर वहाँ सवाया संसार खड़ा करने की नौबत आ जाएगी। यदि सचमुच मन में वैराग्यवृत्ति हो, तो फिर संन्यास भी कौन कठिन बात है? संन्यास को आसान बताने वाले स्मृतिवचन तो हैं ही। परन्तु मुख्य बात वृत्ति की है। जिसकी जो सच्ची वृत्ति होगी, उसी के अनुसार उसका धर्म होगा। श्रेष्ठ-कनिष्ठ, सरल-कठिन का यह प्रश्न नहीं है। विकास सच्चा होना चाहिए। परिणति सच्ची होनी चाहिए।

परन्तु कुछ भावुक व्यक्ति पूछते हैं-''यदि युद्ध-धर्म से संन्यास सदा ही श्रेष्ठ है, तो फिर भगवान ने अर्जुन को सच्चा संन्यासी ही क्यों नहीं बनाया? उनके लिये क्या यह असंभव था?'' उनके लिये असंभव तो कुछ भी नहीं था। परन्तु फिर उसमें अर्जुन का पुरुषार्थ ही क्या रह जाता? परमेश्वर ने स्वतंत्रता दे रखी है। अत: हर आदमी अपने लिये प्रयत्न करता रहे, इसी में मजा है। छोटे बच्चों को स्वयं चित्र बनाने में आनंद आता है। उन्हें यह पसंद नहीं आता कि कोई उनसे हाथ पकड़कर चित्र बनवाये। शिक्षक बच्चों के सवाल झट् हलकर दिया करें, तो फिर बच्चों की बुद्धि बढ़ेगी कैसे? माँ-बाप और गुरु का काम सिर्फ सुझाव देना है। परमेश्वर अंदर से हमें सुझाता रहता है। इससे अधिक वह कुछ नहीं करता। कुम्हार की तरह भगवान ठोंक-पीटकर अथवा थपथपाकर हर एक का मटका तैयार करे, तो उसमें मजा ही क्या? हम हंड़िया नहीं हैं, हम तो चिन्मय हैं।

इस सारे विवेचन से एक बात आपकी समझ में आ गयी होगी कि गीता का जन्म, स्वधर्म में बाधक जो मोह है, उसके निवारणार्थ हुआ है। अर्जुन धर्म-संमूढ़ हो गया था। स्वधर्म के विषय में उसके मन में मोह पैदा हो गया था। श्रीकृष्ण के पहले उलाहने के बाद यह बात अर्जुन खुद ही स्वीकार करता है। वह मोह, वह ममत्व, वह आसक्ति दूर करना गीता का मुख्य काम है। इसीलिए सारी गीता सुना चुकने के बाद भगवान ने पूछा है- ''अर्जुन, तेरा मोह गया न?'' और अर्जुन जवाब देता है, ''हाँ, भगवान, मोह नष्ट हो गया, मुझे स्वधर्म का भान हो गया।'' इस तरह यदि गीता के उपक्रम और उपसंहार को मिलाकर देखें, तो मोह-निरसन ही उसका तात्पर्य निकलता है। गीता ही नहीं, सारे महाभारत का यही उद्देश्य है। व्यासजी ने महाभारत के प्रारम्भ में ही कहा है कि लोकहृदय के मोहावरण को दूर करने के लिये मैं यह इतिहास-प्रदीप जला रहा हूँ।

(शेष पृष्ठ 34 पर)

अश्रु भरी कहानी

– कैलाशपालसिंह इनायती

सन् 2017 के उच्च प्रशिक्षण शिविर बूढा पुष्कर में एक दिन के लिये मैं गया। शिविर में पहुँचते ही मेरे स्मृति पटल पर सन् 1965 के बूढा पुष्कर शिविर की स्मृति उभरने लगी। दोपहर का समय था, घटों में पानी भरने का कार्यक्रम चल रहा था। पूज्यश्री तनसिंहजी के सामने से एक बालक, जिसकी लम्बाई करीब-करीब बाल्टी के समान थी, बाल्टी को भर कर डगमगाता हुआ अपने घट में जा रहा था। दो-तीन कदम चलकर बाल्टी को जमीन पर रखता, पुन: उठाकर पूरी ताकत लगाकर पुन: दो-तीन कदम चलता। उसकी इस क्रिया को देखकर पूज्यश्री भाव-विभोर हो गए और उनकी आँखों से कृतज्ञता के आँसू छलक पड़े। पूज्यश्री ने सोचा होगा कि जिस कौम में ऐसे नादान बच्चे भी अपने संपूर्ण भाव से बल लगाकर कर्म में रत होते हैं, उस कौम को उठने से कौनसी परिस्थिति रोक सकती है। इसी कारण से कृतज्ञता के आँसू छलक पड़े। मैं खो गया उनकी अश्रु भरी कहानी में।

मैं और पूज्यश्री एक बार रेल में यात्रा कर रहे थे, उस समय हमारे पीछे बैठी हुई एक महिला अपने पास बैठी महिला यात्री को अपने जीवन की दुखान्त घटना सुना रही थी। वह दुखान्त घटना हमारे कानों में भी स्पष्ट सुनाई दे रही थी। उसकी दर्द भरी कहानी को सुनकर पूज्यश्री व्यथित हो गए और उनकी आँखों से आँसू छलक पड़े। मैं उनकी अश्रुभरी कहानी में गोते लगाने लगा।

शिविरों में विदाई के प्रवचनों में द्रोपदी की पीड़ा की अभिव्यक्ति करते समय वे स्वयं व्यथित हो जाते। उनकी आँखें जलजली हो जाती। अवरुद्ध कण्ठ स्वर से कहते कि जब श्रीकृष्ण कौरव व पाण्डवों में समझौता करने के लिये जा रहे थे तब द्रोपदी ने खुले केशों को हिलाते हुए, उनका मार्ग काट दिया। श्री कृष्ण को यह संदेश दे दिया कि कृष्ण तुम समझौता कराने जा रहे हो, यदि तुमने समझौता करा दिया तो मेरी प्रतिज्ञा का क्या होगा, जो मैंने दुशासन के खून से बालों को धोकर संवारने की प्रतिज्ञा की थी। व्यथित द्रोपदी के वेदना से व्यथित होकर पूज्यश्री के कण्ठ अवरुद्ध हो जाते थे। इस घटना की अभिव्यक्ति का अभिप्राय शिविरार्थियों को यह संदेश देने का था कि शिविर से जाने के बाद तुम्हारे जीवन में विपरीत परिस्थितियाँ आने पर उन विषम परिस्थितियों से समझौता मत कर लेना। यदि समझौता कर लिया तो मेरी कौम के खुले बाल कैसे संवारे जाएंगे, कौम की जागृति का क्या होगा। उनकी पीड़ा आँखों से बहने लगती तो शिविरार्थियों की आँखों से इतने आँसू झरते कि जमीन पर उनके सामने गीले दाग बन जाते।

हल्दीघाटी शिविर में चेतक की स्वामीभक्ति के प्रति कृतज्ञता जब आँसू बन बही, तो वे गा उठे-

बेदर्द न बन रे याद में अब, जल ढलता है तो ढलने दे।।
यह तो केवल पशु नहीं था, स्वर्ग का शापित देव पुरुष था।
यह मूक नहीं था इसकी भाषा, कोई सुनता है तो सुनने दे।।

उस समय उपस्थित श्रोताओं के इतने आँसू बहे थे कि वहाँ की पूरी जमीन गीली हो गई। इसी हल्दीघाटी में चलते युद्ध के बीच शक्तिसिंह प्रताप से आकर ऐसे मिला कि वे गुनगुनाए बिना नहीं रह सके-

यहीं शक्तिसिंह आ के मिला, राम से ज्यों था भरत मिला।
बिछुड़े दिल यदि मिलते हों तो, पगले अब तो मिलने दे।।

इतना ही नहीं हल्दीघाटी के पीले रंग के पत्थरों को भी देखकर उनसे रहा नहीं गया और भावना बह चली-'हर पत्थर किसी की याद करके पड़ गया पीला, देख लो पड़ गया पीला।' महाराणा प्रताप की याद में, हल्दीघाटी में जूझे देश के परवानों की याद में पत्थर तो पीले पड़ गए और वे द्रवित हो गए।

क्षिप्रा के तीर पर बनी दुर्गादास की समाधि पर उज्जैन शिविर में पहुँचे तो उनकी व्यथा बह चली-

मेरे वीर दुर्गादास! लौट के आ रे! लौट के आ।
पाल पोष बड़ा किया था राज्य भी लौटा दिया,
काश मेरे कुल की रीत, देश से निकाल दिया,
मेरी कृतघ्नता को वीर एक बार भूल जा!
लौट के आ रे! लौट के आ।
तेरी समाधि चीखती है वियोगिनी सी बनी,
उसी के आँसुओं से क्षिप्रा हो गई मंदाकिनी,
तेरी यादगार की तू याद ले के जारे! आ!
लौट के आ रे! लौट के आ।
घोड़े की पीठ पर भी रोटी सेकना नहीं सुना,
ठोकर लगाये राज्य के वो सिपाही ना सुना,
उपेक्षितों की धड़कनों को आज सुनके जा रे! आ।
लौट के आ रे! लौट के आ।
प्रयास एकता के तेरे देश नहीं भुलाएगा,
तेरे बिना बिछुड़े हुओं को कौन एक बनाएगा,
टूटी हुई है शृंखला, ये कड़ी तो जोड़ के जा।
लौट के आ रे! लौट के आ।

तेरे उत्साह, त्याग, बलिदान की याद से जो मैं व्यथित हो रहा हूँ, 'व्यथा मेरी तू ले के जा'। कृतज्ञता से भाव विभोर हो बह रही उनकी अश्रुधारा में श्रोताओं की आँखों से बही धारें भी बह चली क्षिप्रा की ओर।

वे पहुँचे महाराणा सांगा के युद्धक्षेत्र खानवा में, जहाँ महाराणा सांगा के घोड़े दौड़ रहे थे-बड़बड़ां-बड़बड़ां। मृत्यु शैय्या पर लेटे महाराणा अपने अधूरे अरमानों पर व्यथित थे। काश! मुझे अपने ही धोखा न देते। यह धोखा ही मेरी हार का कारण बना, अन्यथा मैंने बेजोड़ संगठन बनाया था। धोखे से मेरे सपने चूर-चूर हो गए। सांगा अपने शरीर के नवासी घावों से व्यथित नहीं थे, धोखे के कारण निर्णायक जीत का सपना अधूरा रह गया, उससे व्यथित थे। सांगा की उस व्यथा को कहानी का रूप देकर पूज्यश्री ने उनके संगठन के सपने के प्रति कृतज्ञता प्रकट की।

स्वयं पूज्यश्री ने भी कौम का एक बेजोड़ संगठन बनाने का स्वप्न देखा है। महाराणा सांगा ने संगठन के लिये जो प्रयास किया, उससे कहीं अधिक श्रम व संघर्ष पूज्यश्री ने किया। वे भी अपने संगठन के लोगों से यह कभी अपेक्षा नहीं करेंगे कि उनमें से कोई धोखा दे। जो धोखा देगा, विश्वासघात करेगा, वह कौम के संगठन पर आघात करेगा। इसलिए सर्वप्रथम मैं स्वयं अपने आपको टटोलूं, क्या मैं उनके स्वप्न के अनुसार संगठन की कड़ी बना हुआ हूँ? यदि नहीं, तो सुदृढ़ कड़ी बनने की साधना में नियोजित रहूँ। विधाता से यही प्रार्थना है कि यदि ऐसा मैं न कर सकूं तो मेरी जीवन लीला समाप्त कर दे पर विश्वासघात की डगर की ओर नजर तक न जाय। कौम की व्यथा से उमड़े आँसुओं की कहानी अविरलरूप से चलती रहे।

पृष्ठ 6 का शेष

समाचार संक्षेप

बालकों की भावना को समझकर उचित रूप से उन्हें प्रशिक्षित कर सकती हैं।

समीक्षा गोष्ठी :

जून माह में चालू सत्र के लिये श्री क्षत्रिय युवक संघ के कार्यक्रम प्रत्येक प्रान्त के लिये निर्धारित किए गए थे। तब से लेकर दिसम्बर अंत तक अधिकतर कार्यक्रम रहते हैं, बाद में बालकों की परीक्षाएँ निकट होने से उनसे सम्बन्धित कार्य कम रहते हैं, अन्य कार्यक्रम चलते रहते हैं। अत: जून से दिसम्बर तक के निर्धारित कार्यों की समीक्षा के लिये 17 दिसम्बर को एक गोष्ठी का आयोजन संघशक्ति कार्यालय जयपुर में किया गया। राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र से संघ के प्रान्तप्रमुख और संभाग प्रमुख इस गोष्ठी में सम्मिलित हुए और अपने-अपने क्षेत्र के कार्यक्रमों की प्रगति प्रस्तुत की। इस वर्ष अनेक नए स्थानों पर संघ के कार्यक्रम बढे और इसी प्रगति को बनाए रखने का निश्चय किया गया।

*

विचार-सरिता

(सप्तविंश लहरी)

– विचारक

विचार ही संसार है। हमारे विचारों ने ही इस संसार की रचना की है। संसार की रचयिता हमारी बुद्धि है। बुद्धि की संरचना का नाम ही संसार है। जैसी हमारी बुद्धि, वैसा ही हमारा संसार। विचार कभी भी स्थाई नहीं ठहरते, वे सदैव बदलते रहते हैं। नवीन-नवीन विचारों के उठने के कारण संसार भी नित प्रति नवीन दिखता है। जो सदैव सरक रहा है, उसी का नाम संसार है। वेदान्तगत ग्रन्थ विचार सागर में आया है –

जाग्रत में जुं प्रपंच प्रभासत, सो सब बुद्धि विलास बन्यो है।
ज्यूं सपने महिं भोग्य न भोग, तऊं एक चित्र विचित्र जन्यो है।।
लीन सुषूप्ति में मति होत ही, भेद भगै एक रूप सुन्यो है।
बुद्धि रच्यो जु मनोरथ मात्र सु, निश्चल बुद्धि प्रकाश भन्यो है।।।

उपरोक्त सवैये का भावार्थ यही है कि इस पञ्चभौतिक देह रूपी आयतन में तीन देह और तीन ही अवस्था कही गई है। दृश्य रूप से दृष्टिगोचर होने वाला तथा नाम रूप से जाना जाने वाला यह स्थूल-देह जो सावयव है, विकारी है और काल करके मरण को प्राप्त होता है, इसे स्थूल-देह के नाम से कहा गया है। स्थूल-देह की अवस्था जाग्रत कही गई है। इस जाग्रत अवस्था में हम जिस विश्व का दर्शन कर रहे हैं वह सब हमारी बुद्धि का संकल्प मात्र है। इस जाग्रत अवस्था में स्थूल-देह का अभिमानी जीव, स्थूल भोगों का आनन्द लेता है इसलिए इस जीव का नाम भी विश्व कहा गया है। जाग्रत में जीव का स्थान नेत्रों में होता है और वह विश्व का दर्शन करता है। इस विश्व (जगत) का अस्तित्व तभी तक है जब तक जाग्रत अवस्था है। इस अवस्था में बयालीस तत्वों का व्यवहार चलता है। व्यवहार के बयालीस तत्वों का कार्य व्यवहार विस्तार से करने का यहाँ औचित्य प्रतीत नहीं होता अत: इसे समझने के लिए इतना ही काफी है कि इस शरीर की पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पांच कर्मेन्द्रियाँ तथा चार अन्त:करण ये हुए चौदह पुर्जे। इनमें प्रत्येक के एक-एक विषय और एक-एक देवता मिलाने से ये हुए बयालीस। इस तरह चौदह+चौदह+चौदह मिलाने से बयालीस तत्वों से जाग्रत का व्यवहार चलता है।

इसी प्रकार इस देह की स्वप्न अवस्था है। वहाँ भी जीव रचित सृष्टि का दर्शन होता है। स्वप्न अवस्था में भी जाग्रत की तरह उपरोक्त बयालीस तत्वों से ही स्वप्न की सृष्टि दृष्टिगोचर होती है। स्वप्न अवस्था काल में लिंग देह (सूक्ष्म देह) के अभिमानी जीव को तैजस कहा गया है। तैजस जीव का निवास कण्ठों में बताया गया है। यहाँ हिता नाम की नाड़ी जो कि बाल के हजारवें भाग जितनी सूक्ष्म है, इस नाड़ी में ही देखी सुनी वस्तुओं के संस्कार के कारण स्वप्न का निर्माण होता है। साक्षी के आसरे बुद्धि की स्फूरणानुसार वहाँ एक विचित्र संसार रच जाता है जिसे हम जगने के बाद स्वप्न की संज्ञा देकर उसे मिथ्या करार दे देते हैं। जब तक स्वप्न की अवस्था विद्यमान रहती है तब तक वह संसार सत्यवत हमको रुचिकर, आनंद और भय का अनुभव कराता रहता है और ज्यों ही स्वप्न अवस्था का अभाव होकर सुषुप्ति या जाग्रत अवस्था का पहरा आ जाता है तो स्वप्न के संसार का अस्तित्व भी मिट जाता है।

स्वप्न काल में रचित संसार में क्रमबद्धता नहीं रहती। वहाँ जो जो बुद्धि संकल्प करती है, त्यों त्यों ऊटपटांग दृश्य उभरते जाते हैं। जैसे बाजार कलकत्ते का तथा व्यापारी व सौदागार बीकानेर के। भरे बाजार के बीच में से रेलगाड़ी भी निकल जाती है तो कहीं नदी-नालों के बीच खेत-खलिहान आदि आदि। इस तरह से सूक्ष्म देह का अभिमानी तैजस जीव बिना भोग सामग्री के हर्षित व भयभीत होता है।

तीसरी अवस्था जब सुषुप्ति आती है तो वहाँ हमारी बुद्धि अज्ञान के आसरे होकर गट्ठारूप हो जाती है। जैसे

तरल रूप से रहने वाला पानी जब फ्रीजर में रखा जाता है तो बर्फ रूप में गट्ठाकार हो जाता है ऐसे ही नाना खेल रचने वाली बुद्धि जब अज्ञान में डूबती है तो संकल्प रहित होकर गट्ठारूप हो जाती है और वहाँ जाग्रत व स्वप्न दोनों सृष्टियों का अभाव होकर कुछ भी भान नहीं रहता है। तभी तो जब पुन: हम जाग्रत अवस्था के अभिमानी होते हैं तो उठने के बाद कहते ही हैं कि-आज तो कुछ भी ख्याल नहीं रहा, और गहरी नींद के कारण सुख से सोया।

इससे यह सिद्ध होता है कि जाग्रत व स्वप्न दोनों बुद्धि जन्य हैं। यह सब बुद्धि का विलासमात्र है। सुषुप्ति में जब बुद्धि निश्चल हो जाती है तब जाग्रत और स्वप्न दोनों अवस्थाओं का अभाव हो जाता है और एक आनंद ही आनंद रहता है। ऐसे ही जिस महापुरुष की वृत्ति स्वरूपाकार होकर निश्चलता को प्राप्त हो गई है, उसकी दृष्टि में प्रपञ्च में सत्यता बुद्धि का अभाव हो जाता है और वह जगत में निरासक्त भाव से जीवन व्यतीत करता है। जगत के मिथ्यात्व वर्णन पर एक रचना प्रस्तुत है।

साधो भाई जग मिथ्या बतलाया।
जो दीखै सो कहिये माया आप अलोगत थाया।।

सपन रच्यो जद भई सपूती, सुत को लाड लडाया।
आँख खुली तब रही निपुती, सपने मात्र सुख पाया।।

मरुभूमि में मरु की क्रिया, सलिल रूप भरमाया।
कुरंग पिपासा कबहुं न भागी, दौड़-दौड़ दु:ख पाया।।

रवि रश्मि की अद्भुत लीला, सात रंग छिटकाया।
पावस ऋतु में अम्बर पट पर, गौरमदाइन बन छाया।।

शरद ऋतु में रवि प्रकाश, गान्धर्वनगर बसाया।
ऊँचा नीचा महल मालीया, बिना होत दरसाया।।

स्थाणु में पुरुष प्रकटाया, पुरुष जाण बतलाया।
हाले न डोले मुख नहीं खोले, पुरुष कहाँ उठ धाया।।

रजनी काज रजु नहीं जाण्या, उल्टा बोध करवाया।
जाण बिना जाणी दु:ख पाया, भुजंग जाण भय खाया।।

सीपी में भोडल की चमकी, रजत जाण हरषाया।
जोरावर आतम में जग यूं, जल बिच तरंग रहवाया।।

विवेकपूर्ण विचार से ही हमें सत् और असत् की जानकारी होती है। ज्ञान दृष्टि से जब विचार करते हैं अर्थात् यथार्थ रूप से जब देखते हैं तो इस जगत की पोल खुल जाती है। जैसे इस जगत की अलग से कोई सत्ता नहीं ऐसे ही जाग्रत में नाम रूप से जाना जाने वाला यह देह भी अपंचीकरण पञ्चमहाभूतों का पञ्चीकरण मात्र है। देह के सम्बन्ध में एक रचना प्रस्तुत है-

साधो भाई ऐसी देह कहानी।
देह का भाव तजे बिन डूबै, क्या मूरख क्या ज्ञानी।।

चारों जीव अवस्था चारों, चारों देह मिलानी।
तीन गुण पुनि शक्ति तीनों, पांच कोष विगतानी।।

विश्व जीव अवस्था जाग्रत, देह स्थूल कैहानी।
रजोगुण अरु क्रिया शक्ति, कोष अन्नमय प्रानी।।

तैजस जीव सपन में राजी, लिंग देह अभिमानी।
सत्वगुण संग शक्ति ज्ञाना, कोश मनो विज्ञानी।।

प्राज्ञ जीव सुषोप्ति मांही, कारण देह बखानी।
गुण तम मान द्रव्य की शक्ति, आनंद कोष रहानी।।

साक्षी स्वरूप अवस्था तुरीय, महाकारण कहे ज्ञानी।
जोरावर लख खेल खिलौना, हुई बंध की हानी।।

शिवोहं! शिवोहं!! शिवोहं!!!

यह शरीर जीवन का साध्य नहीं, महज साधन है। यदि यह भाव समाज में आज दृढ़ हो जाए तो फिर शरीर सुख का जो इतना आडम्बर बांधा जाता है, उसके सुख साधनों के लिये जो इतना अमोल कर्म, छल, प्रपंच करना पड़ता है, वह सब दूर हो जाए और यह जीवन हमें और ही तरह से दीखने लगे।

- लक्ष्मीनारायण लाल

गतांक से आगे

गुजरात में सोलंकी कुल का शासन

संकलन कर्ता–गिरधारीसिंह डोभाड़ा

राजा त्रिभुवनपाल :

भीमदेव द्वितीय के बाद पाटण के राज्य सिंहासन पर आरूढ होने वाला त्रिभुवनपाल सोलंकी था। त्रिभुवनपाल ने वि.सं. 1298 तदनुसार ई. स. 1242 में राज्य सत्ता संभाली। वह भीमदेव के बाद गद्दी वारिस के अधिकार से राजगद्दी पर बैठा था। उसने सिर्फ दो वर्ष ही राज्य किया।

त्रिभुवनपाल का मेवाड़ के राणा जैत्रसिंह के साथ युद्ध हुआ। भीमदेव के समय मेवाड़ पाटण के अधीन था। त्रिभुवनपाल के सत्ता पर आते ही जैत्रसिंह ने अपने आपको स्वतंत्र घोषित कर दिया। त्रिभुवनपाल ने अपने बालार्क नामक कोतवाल को जैत्रसिंह को दबाने के लिये भेजा। बालार्क नागदा का कोतवाल था। जैत्रसिंह ने कोटड़ा का प्रदेश दबा लिया था। इस युद्ध में बालार्क राणा जैत्रसिंह की नजर समक्ष ही युद्ध में मारा गया।

भीमदेव ने 63 वर्ष तक राज्य किया था। इतने लम्बे काल तक राज करके भीमदेव का निधन हुआ था इसलिए त्रिभुवनपाल अपनी वृद्धावस्था में राजगद्दी पर बैठा। इसलिए राजगद्दी पर बैठने के दो वर्ष बाद ही उसकी मौत हो गई थी। भीमदेव के शक्तिशाली मंडलेश्वर लवण प्रसाद और वीरधवल की मृत्यु भीमदेव के जीवनकाल में ही हो गई थी। वीरधवल का पुत्र विसलदेव धवलक का राणा बना। विसलदेव भी त्रिभुवनपाल का वफादार मंडलेश्वर था। त्रिभुवनपाल की मृत्यु के बाद विसलदेव वाघेला पाटण की गद्दी पर बैठा क्योंकि त्रिभुवनपाल के पुत्र नहीं था और विसलदेव भी सोलंकी कुल की दूसरी शाखा का ही था।

त्रिभुवनपाल की मृत्यु के साथ ही गुजरात में सोलंकी शासन के अद्यस्थापक मूलराज देव प्रथम के वंश की सत्ता का अंत हो गया। सिद्धराज की अपुत्र मृत्यु होने से जैसे भीमदेव प्रथम और रानी उदयमति के वंश का अंत आ गया, उसी प्रकार त्रिभुवनपाल की अपुत्र मृत्यु होने से भीमदेव प्रथम और रानी बकुलादेवी के वंश का अंत आ गया। सोलंकी कुल की दूसरी शाखा मूलराज प्रथम के सौतले भाई राकायत सोलंकी के वंश का शासन अब शुरू हुआ।

त्रिभुवनपाल के सुकृत्य :

त्रिभुवनपाल ने मंडली के शैव मंदिर के मठाधिपति को सत्रागार में कार्यटिको के भोजन के लिये विषय पथक और दंडाही पथक में आए हुए भांपहर गाँव और राजपुरी गाँव दान में दिये। इस प्रकार त्रिभुवनपाल ने भी अपने पूर्वज राजाओं की तरह मंदिरों को भूमि दान और गांव दान किये।

त्रिभुवनपाल की मृत्यु के साथ ही गुजरात में सोलंकी कुल के राजपूतों का शासन 302 वर्ष तक राज करके समाप्त हो गया और सोलंकी कुल की वाघेला वंश का शासन वि.सं. 1300 तदनुसार ई.स. 1244 से शुरू हुआ। गुजरात के अणहिलपुर पटक के राजसिंहासन पर आने वाले वाघेला वंश का प्रथम राजा विसलदेव था।

सोलंकियों के लम्बे शासनकाल (302 वर्ष) में गुर्जर देश (गुजरात) ने अपनी राज्य सीमाएँ काफी विस्तृत की। पूर्व में मालवा, लाट, पश्चिम में सौराष्ट्र, कच्छ, मारवाड़ में शाकंभरी, सांभर, मेवाड़, बागड़ तक गुजरात की सत्ता फैली हुई थी। गुजरात ने चहुं ओर से अपनी सीमाओं को सुरक्षित किया। सोलंकी शासन के दौरान व्यापार-वाणिज्य में भी काफी प्रगति हुई। खंभात, भड़ूच और सूरत बंदरगाह उसके मुख्य बंदरगाह थे। वहाँ से अरबसागर के अन्य बन्दरगाहों के साथ एवं अन्य द्वीपों के साथ व्यापार होता था। गुजरात की प्रजा साहसिक व्यापारी प्रजा बनी थी। प्रजा धन-दौलत से समृद्ध बनी। पाटण नगरी को मुसलमानों (महमद गजनी) और अन्य एक-दो राजाओं ने लूटा भी था लेकिन जल्द ही उसने अपनी वह समृद्धि पुन: अर्जित कर ली थी। गुजरात में अन्य कोई चोर लुटेरों आदि का भय नहीं था।

गुजरात में खेती और पशुपालन का उद्योग भी विकसित हुआ। हर प्रकार के धान्य, कपास और फल उगाये जाते थे। गुजरात के बन्दरगाह भृगुपुर (भड़ूच), सूधपुर (सूरत) आदि बन्दरगाह कपड़े और चर्म की चीजों के मुख्य केन्द्र थे। पाटण के पटोड़े (साड़ी) जग विख्यात थी और ऊँचे दामों पर विदेशों में निर्यात होती थी।

गुजरात में सोलंकी शासनकाल में साहित्य का भी खूब विकास हुआ था। राजाओं ने साहित्यकारों, कवियों, विद्वानों को गुजरात में बसाकर दान-पुरस्कारों से प्रोत्साहित किया। विशेषकर सिद्धराज जयसिंह और कुमारपाल के समय में जैन और ब्राह्मण साहित्य एवं संस्कृत साहित्य का अधिक विकास हुआ। जैन मुनि रचित व्याकरण का ग्रंथ 'सिद्धहेमशब्दानुशासन' और संस्कृत एवं प्राकृत भाषा में रचित महाकाव्य 'द्वयाश्रय' प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

शिल्प, स्थापत्य और कला के क्षेत्र में गुजरात में जितना सोलंकी शासनकाल में विकास हुआ उतना और कहीं नहीं हुआ। मूलराज प्रथम ने प्रसिद्ध रूद्रमहालय का निर्माण कार्य शुरू करवाया था और सिद्धराज जयसिंह ने उसे पूर्ण करवाया था जिनके अवशेषों को देखने से उस समय की कलाकृति और स्थापत्य का अनुमान लगाया जा सकता है। महमूद गजनी के ध्वस्त करने के बाद भीमदेव प्रथम ने सोमनाथ का पत्थर का भव्य मंदिर और मोढेरा में सूर्य मंदिर बनवाया था, जिसे देखने के लिये देश-विदेश से अनेकों पर्यटक आज भी आते हैं। भीमदेव की रानी उदयमति द्वारा पाटण में निर्मित रानी की बाव तो विश्व में अद्वितीय है। वैसा ही पाटण में सिद्धराज जयसिंह द्वारा बनाया गया सहस्रलिंग तालाब भी है। भीमदेव प्रथम के मंत्री विमलशाह द्वारा निर्मित अंबाजी के पास कुंभारिया के पत्थर से बनाए गये मंदिर और आबू पर्वत पर संगमरमर से बना 'विमलवसही' आज भी वैसे के वैसे दर्शनीय हैं। तारंगा में कुमारपाल द्वारा निर्मित अजितनाथ का जैन मंदिर बाहरी और भीतरी कला कृतियों से भरा पड़ा है। मंदिरों के अलावा सिद्धराज जयसिंह द्वारा निर्मित झीझुवाड़ा, डभोई और वढवाण के किलों के अवशेषों को देखने से उनकी भव्यता का अनुमान लगाया जा सकता है।

न्याय और दंड के लिये तो आज भी सोलंकी शासकों का दृष्टांत दिया जाता है। मूलराज प्रथम अपने ही मामा को मारकर पाटण की गद्दी पर बैठा था, लेकिन गुजरात को स्थिर, समृद्ध, विस्तृत और शक्तिशाली बनाकर मामा की हत्या का प्रायश्चित स्वयं ने अग्नि प्रवेश करके किया। सिद्धराज ने प्रजा को परेशान करने वाले मामा मदनपाल को दंडित कर उसे मृत्युदंड की सजा दी थी। मीनलदेवी ने तालाब निर्माण में बीच में आने वाली गणिका की जमीन जबरदस्ती न लेकर तालाब को टेढा बनाकर बेमिशाल न्यायप्रियता दिखाई थी। न्याय के लिये अपनों को दंडित किया तो अन्यों को क्षमा किया था। जिस राणक सोनलदेवी के कारण जूनागढ के रा'खेंगार के साथ सिद्धराज ने युद्ध करके रा'खेंगार को मारा और उसी राणक सोनलदेवी की सती होने की इच्छा पर रा'खेंगार का सिर लाकर राणक सोनलदेवी को दिया और वह अपने पति का सिर गोद में लेकर सती हुई, उसके साथ किसी प्रकार की जबरदस्ती नहीं की गई।

प्रजा के सुख-दुख जानने के लिये राजा स्वयं भेष बदलकर नगर चर्या करता था। राज्य की आय का बड़ा हिस्सा बनने वाले यात्रा कर को समाप्त किया गया और अपुत्रिका धन लेने की प्रथा को भी बन्द कर दिया गया। अकाल के समय में किसानों की लगान माफ कर दी जाती और राजकोष से सहायता की जाती।

गुजरात के राजा स्वयं शिवधर्मी होते हुए भी अन्य सभी धर्मों और सम्प्रदायों का सम्मान करते थे और उनके प्रति समभाव रखते थे। शिव मंदिरों के साथ-साथ अन्य धर्मों के देव स्थानों का निर्माण भी करवाते थे और उनका जिर्णोद्धार भी करवाते थे। उनके निर्वाह के लिये भूमि व गायों का दान भी करते थे।

राज्य की प्रजा का कल्याण, उनके सुख, उनकी सुरक्षा, उनके प्रति न्याय, सुरक्षित और समृद्ध राज्य की

(शेष पृष्ठ 28 पर)

पुरजा-पुरजा कट मरे

– स्वरूपसिंह जिंझनियाली

सिक्ख एक पंथ है। यह कोई एक जाति नहीं है। हिन्दु धर्म का एक भाग है जिसे कुछ नये पन में लाकर गुरु नानाक देव ने स्थापित किया। दसवें एवं अन्तिम गुरु गोविन्दसिंहजी ने विशेष वेश-भूषा से अलग पहचान दी। सिक्ख लोग अपने पंथ एवं कर्तव्य के लिये पूर्ण समर्पित, निष्ठावान और संगठित रहते हैं। अपने मानक मूल्यों एवं आस्थाओं पर इन्हें पूर्ण विश्वास है। सनातन मूल्यों की रक्षा के लिये इनके बलिदान का भारत में बहुत सम्मान है, होना भी चाहिए। उत्तर-पश्चिम में खेबर के दर्रे से आने वाले अनेक मुस्लिम आक्रांताओं को पंजाब प्रदेश के सिक्ख शूरवीरों ने झेला है। सिक्खों और उनके गुरुओं का देश के प्रति बलिदान बड़ा ही सराहनीय है। देश के लिये अपने पुत्रों की कुर्बानी (उन्हें आंतकी शासक औरंगजेब ने दीवार में जिन्दा चुनवा दिया था) देने वाले गुरु गोविन्दसिंह ने राजपूताना के राजपूत राजाओं और मराठवाड़ा (महाराष्ट्र) के शिवाजी महान से मिलकर संयुक्त हिन्दु संगठन बनाने का प्रयास किया था।

सिक्ख धर्म में कोई मूर्ति पूजा नहीं होती, वे अपने पवित्र धर्म ग्रंथ 'गुरु ग्रंथ साहब' को ही पूजते हैं अथवा माथा टेकते हैं। यह गुरु ग्रन्थ साहब गुरुओं के उपदेश एवं अनेक संतों की वाणियों का संग्रह है। सिक्खों के धर्म स्थल 'गुरुद्वारे' अपनी सेवा एवं स्वच्छता के लिये प्रसिद्ध है। यहाँ बारहवों मास लंगर चलता रहता है, जिसमें निशुल्क भोजन उपलब्ध कराया जाता है। गुरुद्वारों में ऊँच-नीच का कोई स्थान नहीं होता। सभी बड़े छोटे एक ही स्थान पर बैठकर एक साथ भोजन करते हैं और सेवा भी साथ-साथ करते हैं। सेवा का अर्थ है काम करना जैसे-भोजन बनाना, उसे खिलाना, सफाई करना, बर्तन साफ करना, यहाँ तक कि आने वाले लोगों के जूते तक साफ करना। भारत के सिक्ख राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, गृहमंत्री तक ने यह सब कार्य किया है, जो सीखने, समझने व सोचने के लायक है ताकि हमारे अहं पर चोट लग सके। वाह रे सिक्खी तेरी विशेषता, तेरी रहबरी, तेरा आदर्श, तेरी महानता।

गुरु ग्रन्थ साहब में उल्लेखित कुछ पंक्तियों को जरा देखें-

गगन दमामा बाज्यो,
पड़ियो निशाने घाव।
खेत जो मांडियो सूरमा,
अब झूजन का छाव।
सूरा सो पहचानिये,
जो लड़े दीन के हेत।
पुरजा-पुरजा कट मरे,
कबहु न छोड़े खेत।

अर्थात् आकाश में युद्ध के नगाड़े गुंजायमान हो रहे हैं, उचित जगह पर जख्म का निशान लगा है। योद्धा रणक्षेत्र में जूझ रहे हैं। शूरवीरता की पहचान तब है जब वह दीन दुखियों के लिये लड़े। अन्यों की रक्षार्थ टुकड़े-टुकड़े होकर कट मर जाये परन्तु युद्ध के मैदान को छोड़कर कभी न भागे।

सिक्ख जिन्दा कौम है, खून देना व लेना जानती है। आज भी इनके धर्म मानकों, गुरुओं, उनकी शिक्षाओं आदि पर कोई भी तंज नहीं कस सकता-जिसके लिये आज भी ये सर्वस्व न्योछावर करने को तत्पर रहते हैं।

बहादुरी का अर्थ उदंडता नहीं है। जो अपनी शक्ति से दूसरे को कुचलता है, वह बहादुर नहीं है। बहादुर वह है जो शक्ति होने पर भी किसी को नहीं डराता और निर्बल की रक्षा करता है।

– महात्मा गाँधी

भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में राजपूतों का योगदान

– संकलन – भंवरसिंह मांडासी

भारत के स्वातन्त्र्य आंदोलन में राजपूतों का अति महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है परन्तु राजपूतों के इस योगदान को इतिहासकारों ने स्वातन्त्र्य आंदोलन के इतिहास में पूर्ण ईमानदारी व निष्पक्षता से नहीं प्रस्तुत किया है फिर भी वास्तविकता व सच्चाई को अधिक समय तक छुपाया नहीं जा सकता है, वह स्वत: उजागर हो जाती है।

राजस्थान के राजाओं ने अंग्रेजों की सहायक संधि स्वीकार कर ली थी पर यहाँ के राजाओं के अधीनस्थ बहुत से जागीरदार अंग्रेजों के विरोधी थे। इससे पूर्व ही बिसाऊ के ठाकुर श्यामसिंह ने वि. 1868 में अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ने वाले रणजीतसिंह (पंजाब) की सहायतार्थ फ्रेंच सेनापति के नेतृत्व में अपनी सेना भेजी थी। इसी समय ज्ञानसिंह मण्डावा ने भी रणजीतसिंह की सहायतार्थ अपनी सेना भेजी थी। बहल पर इस समय सल्हेदीसिंह (भोजराजी का शेखावत) के वंशजों का अधिकार था। अमरसिंह की मृत्यु के बाद वहाँ कानसिंह का शासन था। बहल पर अपना अधिकार बनाये रखने के लिये कानसिंह ने अंग्रेजी सेना से संघर्ष किया। ददरेवा के सूरजमल राठौड़ ने कानसिंह की सहायता की। परन्तु बहल पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। श्यामसिंह बिसाऊ ने बहल के पास अंग्रेजी शासन के कई गाँवों पर अधिकार कर लिया था। अंग्रेजों ने जयपुर से श्यामसिंह की शिकायत की। महाराजा जयपुर ने असमर्थता व्यक्त की तब रेजीडेन्ट ने सेना की सहायता से श्यामसिंह को दबाना चाहा। इस पर महाराजा जयपुर के समझाने पर श्यामसिंह शान्त हुए। कानसिंह के बाद उनके भाई सम्पतसिंह ने अपने ठिकाने बहल पर अधिकार करने के लिये अंग्रेजी सेना से युद्ध किया। सुना जाता है कि इस समय तीन हजार भोजराजजी के शेखावत अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ने को पहुँच गये थे। बीकानेर के राजा सरदारसिंह ने अंग्रेजों की सहायता की जिसकी शंकरदान सामौर ने कटु आलोचना की है।

सम्पत लड़ै सीसोद सम, बहल बहुरि चित्तौड़।
बीकाणों लाजां मरै, लाज करो राठौड़।।

रणबांकुरा अगस्त 1989 में सवाईसिंह धमोरा का लेख पृ. 22 से मालूम होता है कि राजस्थान के राजाओं की इच्छा अंग्रेजों को देश से बाहर निकालने की थी परन्तु मराठों ने पिण्डारियों से मिलकर राजस्थान में जबरदस्त तबाही मचाई। राजस्थान के राज्यों की प्रजा को लूटा जाता था, गाँव के गाँव जला दिये जाते थे। राजस्थान के राजाओं से बार-बार असहनीय अर्थ वसूल किया जाता था। अर्थ न चुकाने की स्थिति में आगजनी और भयंकर लूटपाट की जाती थी। 18वीं सदी के अन्तिम चरण से 19वीं सदी के प्रथम चरण तक ऐसी ही स्थिति बनी रही। ऐसी स्थिति में राजस्थान की प्रजा तो इन लुटेरों से तंग थी ही,राजा भी चैन की सांस नहीं ले सकते थे। मुगल सल्तनत मराठों और पिण्डारियों के ऐसे कुकृत्यों को रोक नहीं पा रही थी। ऐसी परिस्थितियों में विवश होकर राजस्थान के राजाओं को लार्ड वेलेजली की सहायक संधि को ई. 1818 में स्वीकार करना पड़ा था।

इन अंग्रेज विरोधी घटनाओं के समय और 1818 ई. की संधियों के बाद अंग्रेज विरोधी वातावरण बनने लगा था। शताब्दियों तक देश, धर्म व संस्कृति की रक्षा करने वाले राजस्थान के वासियों ने और विशेष रूप से राजपूतों ने अंग्रेज विरोधी वातावरण को तैयार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। चारण कवि बांकीदास वेलेजली की सहायक संधि पर प्रहार करने वाले सबसे पहले व्यक्ति थे। उन्होंने राजस्थान वासियों को अंग्रेजों से सचेत रहने को कहा। इन्दौर का होल्कर अंग्रेजों से पराजित होकर जोधपुर की शरण आया। यहाँ के राजा मानसिंह अंग्रेज विरोधी थे। नागपुर का भौंसला मधुराजदेव जब अंग्रेजों से पराजित हुआ तो वह रणजीतसिंह की शरण में गया परन्तु रणजीतसिंह भी आनाकानी करने लगा तब मानसिंह जोधपुर ने उसे अपने पास रखा।

लार्ड विलियम बेंटिंग ने वि.स. 1818 ई. 1831 में जब राजाओं का दरबार किया तो राजा मानसिंह उपस्थित नहीं हुए और न ही उन्होंने राजाओं के साथ हुई संधि का अनुमोदन किया तथा अंग्रेजी सरकार को खिराज भी नहीं दिया। समकालीन कवि करणीदान बारहठ ने मानसिंह के ऐसे कार्यों की प्रशंसा की है।

शेखावाटी में ई.स. 1833-34 के लगभग फोरेस्टर के नेतृत्व में शेखावाटी ब्रिगेड उन लोगों के दुर्ग आदि तोड़ने लगी जो अंग्रेज विरोधी गतिविधियाँ करते थे। शेखावाटी ब्रिगेड के साथ यहाँ के शेखावतों की झड़पें हुआ करती थी। क्रान्तिकारी धीरसिंह शेखावत गुड़ा लड़ते हुए मारा गया तो फोरेस्टर ने उसका सिर मंगवाकर लटका दिया तब एक वीर मीणा युवक ने रात्रि को साहस के साथ प्रवेश कर धीरसिंह का सिर वापस ले आया। लार्ड बेंटिंग ने सांभर झील और सांभर के एक हिस्से पर जबरदस्ती अधिकार कर लिया। इससे जयपुर नरेश रामसिंह और उनकी प्रजा बहुत नाराज हुई तथा 4 जून, 1835 के दिन अंग्रेज रेजीडेण्ट पर आक्रमण किया और उसके सहायक ब्लैक को मौत के घाट उतार दिया।

(क्रमशः)

पृष्ठ 8 का शेष

चलता रहे मेरा संघ

चलें। मत्सर-द्वेष। द्वेष करें पर अन्य लोगों के पारिवारिक सुख, समृद्धि, प्रेम के प्रति द्वेष कर स्वयं वैसा ही प्रेम अपने परिवार में लाने का प्रयास करें और इस प्रकार द्वेष को मित्र बना लें।

चार-दिनों में जो देखें, जो सुनें, उसी पर विचार चलते रहें। चंचल मन को अभ्यास और वैराग्य से नियंत्रित किया जा सकता है। सद् का अभ्यास और असद् से वैराग्य, इस प्रक्रिया से मन नियंत्रित होता है। बार-बार अभ्यास की प्रक्रिया अपनाएँ, शिविरों में आते रहें। अभ्यास से पशु भी राह पर आ जाता है। हम अपनी पशुता का त्याग करें और इंसान बनने का अभ्यास करें। जिसका उपयोग किया है, उसके प्रति अपने दायित्व को समझें और निभावें। कम में संतोष करना सीखें और आसक्ति छोड़कर रहें। प्रेम के बिना परमेश्वर को प्राप्त नहीं किया जा सकता। आसक्ति छोड़ने का अभ्यास करें। न मरने की जल्दी हो और न मरने का भय रहे। सुख और समृद्धि परस्पर प्यार से आती है। उसी मार्ग पर, प्रेम के मार्ग पर चलें, यह संघ की आपसे चाह है।

पृष्ठ 25 का शेष

गुजरात में सोलंकी कुल का शासन

स्थापना, उसका विस्तार, यही उनका परम ध्येय था, जो एक क्षत्रिय का, एक क्षत्रिय राज्य का परम कर्तव्य होता है। इन राजाओं ने ईश्वरीय भाव से प्रजा का पालन किया और न्याय व सुरक्षा प्रदान किए। प्रजा को किसी भी राजा के प्रति असंतोष नहीं था। प्रजाजन अपने दुखों को व्यक्त करने और न्याय पाने के लिये राजा के पास निर्भीक होकर जा सकते थे। शिकायत पर सिद्धराज ने यात्रा कर, कुमारपाल ने अपुत्रिका धन की प्रथा और मूलराज ने अकाल के समय कृषकों की लगान माफ की। खंभात के मुसलमानों की शिकायत पर सिद्धराज ने स्वयं जाकर दोषितों को दंडित किया।

समाज के सभी वर्ण, समाज के सभी अंग अपने-अपने स्वधर्म को, अपने कर्तव्य कर्मों को समभाव और सम्मानपूर्वक वहन करते थे। हालांकि लोगों की आर्थिक स्थिति भिन्न-भिन्न होने के कारण उनके निवास स्थान, उनका रहन-सहन, पहनावा वगैराह उनकी अपनी-अपनी स्थिति के कारण भिन्न-भिन्न अवश्य थी लेकिन उनमें आपसी भेदभाव या राग द्वेष व ईर्षा नहीं थी। राज्य की सारी जनता अपने को एक दूसरे की पूरक और राज्य का अभिन्न अंग मानती थी। किसी भी राजा के समय में प्रजा का कहीं भी विद्रोह नहीं हुआ। प्रजा अपने शासकों से संतुष्ट थी। गुजरात का सोलंकी कालीन युग उसका स्वर्ण युग था।

*

समय भी धन है

– विक्रमसिंह गांवड़ी

संसार में समय देखने के कई साधन हैं। कलाई पर बंधी घड़ी, दीवार पर टंगी घड़ी, घण्टाघर की घड़ी और आजकल तो मोबाइल समय देखने का प्रमुख साधन बन गया है। वैसे सूर्य और चन्द्रमा की स्थिति देखकर समय की जानकारी प्राप्त करने वाले अनुभवी लोग भी मिल जाते हैं। ये सभी साधन समय तो दर्शाते हैं लेकिन ये साधन यह नहीं बता पाते कि क्यों एक व्यक्ति के पास तो अपने दायित्व निभाने के लिये पूरा समय है और क्यों दूसरे व्यक्ति के पास अपने आवश्यक कार्य के लिये भी पर्याप्त समय नहीं है। जबकि दोनों के लिये ही दिन में चौबीस घण्टे होते हैं। वास्तव में समय के बारे में मन की धारणा का ही अन्तर है।

अगर आप समय का सर्वाधिक उपयोग करने में सफल होना चाहते हैं तो उसके लिये यह सोचना ही होगा कि वास्तव में समय तो केवल अभी ही है। कल कभी नहीं आता है। जब वह समय आता है तब वह आज और अभी बन जाता है। जिस प्रकार आने वाला कल नहीं आता, उसी प्रकार बीता हुआ कल भी लौटकर नहीं आता।

समय की पहचान ही जीवन के सुस्वास्थ्य और शान्ति का आधार है। सफलता और समृद्धि की कुंजी भी समय है। समय की पूंजी आपकी अमूल्य सम्पत्ति है। चाहे आपकी आयु कितनी ही हो लेकिन समय आपकी निजी धरोहर है। आपके लक्ष्य तक पहुँचने का आधार बनेगा कि आप समय को कितना व्यवस्थित कर सकते हो और आप उसे कैसे काम में लेते हो। आप समय को उधार नहीं ले सकते। आप उसका संचय भी नहीं कर सकते। आप कुछ परिश्रम कर समय को अर्जित भी नहीं कर सकते। आप समय को केवल खर्च कर सकते हो। उपलब्ध समय की पूंजी आपकी अति-अमूल्य सम्पत्ति है, चाहे आप किसी भी उम्र के क्यों न हों।

आप समय को कैसे खर्च करते हो, उसके लिये क्या व्यवस्था करते हो, उस पर निर्भर होगी आपकी सफलता या असफलता। कठिनाई आने पर दुखी होने के स्थान पर उससे छुटकारा पाने की व्यवस्था कीजिए। घबराहट या निराशा को न आने दें, अपने समय को आपकी आवश्यकता के अनुसार नियोजित और व्यवस्थित करें।

अपनी उपलब्धियों के अभाव के लिये एक बहाना जो लोग अक्सर करते हैं, वह है-क्या करें समय ही नहीं मिलता। वे समय को दोषी बताते हैं पर समय तो जो दूसरों के लिये है, उतना उनके लिये भी है, पर कमी व्यवस्था की है। समय की बचत करने के लिये कार्य का सुनियोजन पहले से करना आवश्यक है। आप अपनी व्यक्तिगत योजना स्वयं बनावें और उसे फिर कार्यान्वित करें। योजना बनाते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि योजना ऐसी हो जिसे आप कार्यान्वित कर सकें, जिसके लिये आप सक्षम हैं। केवल हवाई किले बांधने की कोई आवश्यकता नहीं।

सदा याद रखें कि आप एक समय पर एक ही काम कर सकते हैं। आप एककार्य सम्पन्न कर रहे हैं और साथ में उसी समय दूसरे किसी कार्य की चिंता भी कर रहे हैं तो जो कार्य हाथ में है, उसे आप भली प्रकार सम्पन्न नहीं कर पाएंगे। इसलिए योजनानुसार जो निश्चित किया गया है, एकाग्रतापूर्वक उसे ही सम्पन्न करें। अपने नियमित कार्य में भी नवीनता लाने का प्रयास करें तो वह कार्य भी आनन्ददायक हो जाएगा।

आज के युग में हमारी दौड़ समय के विरुद्ध है। आज अनेक कार्य ऐसे हैं जो केवल विविधता लिये हुए ही नहीं, बल्कि जटिल भी हैं। इसलिए एकाग्रता की शक्ति को बढाकर कार्य करें ताकि जटिलता और विविधता के कारण ज्यादा समय न लगे।

समय की बचत के लिये सतर्कता अपनाएँ। अपने संकल्प, वाणी और कर्म में भेद न रहे। ग्रहण करने की क्षमता को, पात्रता को बढायें ताकि काफी समय बच सके। समय की बचत के लिये व्यर्थ के खाते को बन्द करें। कार्य की महत्ता पर ध्यान दिया जावे। समय एक अनमोल धन है परन्तु उस धन को लूटने वाले चोरों से सतर्क रहने की आवश्यकता है। कम से कम बोलें। जो कार्य चार शब्द कहकर करवा सकते हैं, उसके लिये आठ शब्द क्यों कहें? याद रखने की हर बात को याददाश्त में बनाए रखें और जो बात भूलने की है उसे कभी याद न करें। एकाग्रता की शक्ति बढाएंगे तो कार्यक्षमता बढ जाएगी और समय की बचत होगी।

शान्ति कहाँ है?

– धर्मेन्द्रसिंह आंबली

दिन प्रतिदिन चारों ओर अशान्ति बढती जा रही है। शान्ति का विनाश होता नजर आ रहा है। पिछले 30 वर्षों में लोगों के पास धन बढा, सम्पत्ति बढी, आबादी बढी, शिक्षा बढी, नौकरी तथा तानाशाही बढी है। किन्तु दया, प्रेम, लगाव, करुणा, सहयोग, माधुर्य और शान्ति का तो दिन दो गुना, रात चौगुना पराभव होता जा रहा है। मनुष्य में रोग बढे, अपमृत्यु बढी। भूकम्प, चक्रवात, बाढ, अतिवर्षा आदि के कारण से संसार में लाखों की संख्या में लोग मरते हैं। फिर भी किसी को पूछो कि कैसे हो? तो बताएगा कि शान्ति है। पू. तनसिंहजी सहगान की एक पंक्ति में कहते हैं-'होली जलती खुशियों की, तुम कहते यही बहार' यह हमारे समाज की स्थिति पर कही गई बात, ध्यान से देखें तो सभी पर लागू होती है। न मनुष्य का तन निरोगी है, न मन। आजकल हर विषय को पैसे की तुला में तोला जाता है।

पैसे को कमाने के चक्कर में नींद, चैन हराम हो जाता है, न शान्ति से बात, न साथ मिलकर परिवार का भोजन, न सुख-दुख में कोई साथी। अंधे होकर पैसे के पीछे दौड़ रहे हैं। अंधे पर तो कोई दया भी करे पर आँख होते हुए भी जो देखे बिना दौड़े, उसका कोई क्या करे। पश्चिमी देशों की आपाधापी की स्थिति देखकर भी उन्हीं के अन्धानुकरण में लगे हैं। वहाँ तो अब कुछ परिवर्तन नजर आ रहा है। पाठशालाओं में गीता अपनायी गई है। लोग यज्ञादि करने लगे हैं। शान्ति की खोज में हरिद्वार, ऋषिकेश जैसे कई धार्मिक स्थान पश्चिमी देशों के नागरिकों से भरे रहते हैं। वे लोग पैसा खर्च कर शान्ति की खोज में हैं तो हम पैसे के लिये शान्ति बेचने को तुले हैं।

हम भारतीय कर्म के पुजारी रहे हैं, अब कर्म से हटने लगे हैं। जो नई तकनीक आती है, वह अपनाते जा रहे हैं। पहले हमारी माताएँ घर में गेहूं पीसना, मिर्च मसाला पीसना, कपड़े धोना, गाय-भैंस दुहना, बिलोवणा करना, परिवार का खाना बनाना आदि खुशी-खुशी अपने हाथों से करती थी। न बिजली थी न यंत्र। पूरे दिन काम करते हुए भगवद् नाम का कीर्तन भी कर लेती थी। स्वस्थ रहती थी। आज इन कामों से दूरी है मगर स्वास्थ्य वैसा नहीं है। पैसे खर्च कर बाहरी खाना खाया जाता है, शृंगार की वस्तुएँ काम में ली जाती हैं लेकिन और सुन्दर दिखने की इस प्रवृति में धीरे-धीरे रोगों का बुलावा ही है। स्त्रियों के शृंगार में आने वाली कई वस्तुओं में सूअर की चर्बी, खून आदि काम में आते हैं तो पाउडर में काम आने वाले रसायन आदि निरंतर उपयोग में लिये जाने पर चेहरे की त्वचा को नुकसान पहुँचाते हैं। शरीर से न कर मशीनों से कार्य करने से जो स्वास्थ्य में गड़बड़ होती है, उसे दूर करने के लिये अस्पताल जाओ या जिम जाओ। घर के काम अपने हाथों से करने से स्वस्थ जीवन सुख और शान्ति देता है, इस पर विचार ही नहीं करते।

व्यक्ति पैसा कमाता है वह किसलिए? पहले सुख सुविधा की साधन सामग्री कम थी, पर फिर भी शान्ति थी। आज ये सुविधाएँ बढी हैं पर साथ ही साथ रोग, चिन्ता, अशान्ति आ गई है। इसका मतलब है कि शान्ति सुख-सुविधाओं में नहीं बल्कि मन के संतोष में है। तभी तो श्रीमद् भगवद् गीता कहती है-'त्यागात्शांति अनंतरम'- त्याग से अनन्त शान्ति मिलती है। इसलिए हमको पैसों, सुविधाओं के पीछे नहीं दौड़कर संतोष की ओर बढना चाहिए। साधन प्रकृति के होते हैं और प्रकृति प्रति क्षण-क्षरण होती रहती है। अत: साधनों की दौड़ में न पड़कर अभावों को सहने और कष्ट सहने में परहेज नहीं करना चाहिए। पू. तनसिंहजी ने तो कहा है-'अभाव सहें संचय न करें निज शक्ति कभी भी' जो शक्ति है, उसे बचाकर रखने की बजाय उसे समाज के लिये उपयोग में लेना है और उससे अभाव आता है तो उसे भी सहने की बात कही है।

दूसरे का अधिकार हड़पकर खाने वाले सदैव भय, चिन्ता और अस्थिर मानस से जीते हैं। जबकि अपना अधिकार छोड़कर दूसरों का भला करने वाला सदा खुशहाल, निश्चिन्त, स्थिर मानस और चिर शान्ति से जीवन व्यतीत करता है। पूज्य श्री ने कहा है-'खुद ही तो छला जाता औरों को नहीं छलता।'' ऐसी ऊर्ध्वगति

(शेष पृष्ठ 34 पर)

भक्त शिरोमणि मीरा बाई

– आलेख एवं चित्रांकन ब्रजराजसिंह खरेड़ा

नन्द जी का लाला तो हमारा जीवन रक्षक बनकर आया है... नजर न लगे
जय हो नन्द लाल की
हाथ पर गोवर्धन, मुख पर मुस्कान... कान्हा तो भगवान का रूप है
एक अंगुली पर पर्वत!! इस चमत्कारी को मैं देख भी नहीं सकती... मुँह नहीं देखूंगी, अंगुली तो देख ही सकती हूं

माधवी स्वयं को न रोक पाई- दृष्टि अंगुली से नीचे उतर आई और मुख छवि पर आकर स्थिर हो गई
हे मां!... तूने यह कैसी उलटी सीख दे दी मुझे!... अब तक इस अनुपम छवि को देखने से वंचित रही मैं... यह रूप मर्यादा हनन वाला नहीं, मन की गहराई तक ईश्वरीय आनंद देने वाला है

सात दिन तक गोवर्धन धारण के बाद कृष्ण ने माधवी को यूं बावरी सी खड़े देखा तो...
तुमने अपनी भूल तो स्वीकार कर ली किंतु पश्चाताप स्वरूप तुम्हें कलयुग में जन्म लेना होगा
इतना बड़ा दण्ड वो भी मेरी नादानी का
इसे मात्र दण्ड न कहो... तुम तो कलियुग में प्रभु भक्ति का माध्यम बनोगी... तुम्हारा नाम मेरे नाम के साथ सदा सदा के लिए जुड़ जाएगा

अपनी बात

हमारे समाज में अनेक महापुरुष आए हैं, जिन्होंने अपने उज्ज्वल चरित्र और समाज के प्रति समर्पण में इतिहास रचा है। उपनिषदों की रचना भी क्षत्रियों ने की है। कर्तव्य निष्ठता के अद्‌भुत उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। जीवन के हर क्षेत्र में हमारे समाज ने सीमाएँ बांधी हैं। फिर भी आज क्या समाज का अंधेरा मिट गया? अहंकार, स्वार्थ, ईर्ष्या आदि से जैसे पूरे समाज में रुग्णता आ गई है। उज्ज्वल परम्पराओं के राहगीर समाज की यह स्थिति किसने बना दी? हम समाज-गण ही तो हैं जो अपने आदर्श पुरुषों के मार्ग से हट गए हैं। आदर्श पुरुषों का मार्ग कंटकाकीर्ण है, साधना का है, इसीलिए उससे बचने के तर्क हम उपस्थित कर देते हैं।

सारे संसार का हाल भी ऐसा ही है। राम आए, कृष्ण आए, बुद्ध आए, चौबीस तीर्थंकर आए, ईसामसीह आए, उन्होंने जो रोशनी दी, वह बुझ कैसे गई? बुझाता कौन है? क्या हमारे अलावा कोई अन्य इसका जिम्मेवार है? हम ही हैं जो रोशनी के दुश्मन हैं। रोशनी बुझा देते हैं, पत्थरों की पूजा करते हैं। इन महापुरुषों की अनगिनत मूर्तियाँ बनी हैं, उनकी हम पूजा करते हैं। इनका जीवन कैसा था, इन्होंने कौनसा मार्ग हमें दिखाया, इन्होंने क्या कहा? इन सबसे हमें कोई लेना-देना नहीं, कोई प्रयोजन नहीं, क्योंकि वह तो झंझट की बात है, उस मार्ग पर चलने में तो जीवन बदलना पड़ता है। पत्थर की पूजा में क्या लेना-देना, बहुत आसान काम है।

इन महापुरुषों पर जो गुजरा, उनके मार्ग पर चलने वालों के जीवन में वैसे संकट आते ही हैं। उन संकटों में से गुजरते हुए भी जो अपने मार्ग को नहीं छोड़ते, वे ही रोशनी देते हैं। राम और कृष्ण को हर संकट से गुजरना पड़ा, महावीर को लोगों ने पत्थर मारे, बुद्ध को गाँव-गाँव खदेड़ा, ईसा मसीह को फांसी पर लटकाया क्यों? जो भी रोशनी लाता है, उससे हमारी जिन्दगी का अंधेरा साफ होता है और यह कोई मानने को तैयार नहीं कि मैं अंधेरे में जी रहा हूँ। जो पक्षी उड़ नहीं सकते, वे अगर उड़ने वाले पक्षी के पंख तोड़ दें, तो क्या आश्चर्य है? क्योंकि उड़ने वाला पक्षी उनके अहंकार को चोट पहुँचाता है। ये महापुरुष हमें कहते हैं कि तुम भी परमात्मा हो सकते हो और हम तो मनुष्य होना भी मुश्किल पा रहे हैं। ये हमें विराट ऊँचाई का स्मरण दिलाते हैं कि हमें चक्कर आने लगता है। हम कहते हैं, हम जैसे हैं, भले हैं। हम अपने जैसे सरकते-घसिटते लोगों के साथ भले हैं। तुम हमारी नींद न तोड़ो। हम मधुर सपने ले रहे हैं, तुम हमें ज्यादा न पुकारो।

चिराग जलते रहे हैं, बुझते रहे हैं। जलाने वाले बहुत कम, बुझाने वाले बहुत ज्यादा। अंधेरे में हमने बहुत से स्वार्थ जोड़ रखे हैं। चोरों की बस्ती हो और वहाँ कोई चिराग जलाए, तो चोर बुझा ही तो देंगे। चोर तो जी ही सकते हैं अंधेरे में। चोरों को चांदनी रात बुरी लगती है, अमावस की रात बड़ी प्यारी लगती है। उनका स्वार्थ है। चारों तरफ कंपकंपा देने वाली आंधियाँ हैं, चारों तरफ हवाओं का जोर है। ये हवाएँ, ये आंधियाँ हमारे ही व्यवहार की हैं। हम ही हैं जो उन रोशनी देने वाले पथ प्रदर्शकों की बातों से दूर रहते हैं और अंधेरा फैलता रहता है।

जिनके यहाँ रोशनी है, उसे देखकर वे नाराज होते हैं जहाँ अंधेरा है। जैसे हम हमारी गरीबी से उतने परेशान नहीं होते जितना पड़ोसी की अमीरी से परेशान होते हैं। हमारे पास कार नहीं तो हम परेशान नहीं थे पर यदि पड़ोसी कार ले आए तो हमारी परेशानी शुरू हो गई। दुनिया में इतनी गरीबी नहीं है, जितने लोग परेशान हैं और परेशान गरीबी से कोई नहीं है, अन्यों की अमीरी से है। तुलना पैदा हो गई। तुम्हारे पास है और मेरे पास नहीं, इससे बेचैनी, इससे कांटा चुभता है।

यह बड़ी अजीब दुनिया है, यहाँ लोग अपनी गरीबी से परेशान नहीं हैं, दूसरे की अमीरी से परेशान हो जाते हैं। जो सामान्य अमीरी-गरीबी के तल पर होता है, वह और भी बड़े पैमाने पर आध्यात्मिक तल पर होता है। चिराग तो जलते रहे, लेकिन सवेरा बहुत दूर है। सवेरा कब होगा? सवेरा तब होगा, जब सारी मनुष्यता में एक धार्मिक प्रकाश फैल जाए। सवेरा तब होगा जब सभी के चेहरों पर ध्यान की आभा होगी।

हम हमारे सभी प्रकार के व्यक्तिगत स्वार्थ छोड़कर सामाजिक हित का आभा मय जीवन बना लें यही समय की आश्यकता है।

– : शिविर सूचना :–

यह सूचित करते हुए अत्यन्त हर्ष है कि श्री क्षत्रिय युवक संघ के आगामी प्रशिक्षण शिविर निम्न प्रकार से होने जा रहे हैं–

क्र.सं.	शिविर	समय	मार्ग आदि
1.	प्रा.प्र.शिविर (बालक)	14.01.2018 से 16.01.2018	फूलसिंह इन्टर कॉलेज, जबदी, जनपद-अमरोहा (उ.प्र.) दिल्ली-लखनऊ मार्ग पर स्थित अमरोहा के निकट है जबदी (JABDI)
2.	दंपती	27.01.2018 से 30.01.2018	भारतीय ग्राम्य आलोकायन आश्रम, बाड़मेर।

* शिविर स्थान बाड़मेर में गेहूँ रोड़ पर स्थित है।
* इस शिविर में 55 वर्ष की आयु (पति की) से कम आयु वाले दंपती ही आएँ।
* अकेली महिला या अकेले पुरुष नहीं आएं, दंपती आए।

राजेन्द्रसिंह बोबासर

शिविर कार्यालय प्रमुख (श्री क्षत्रिय युवक संघ)

पृष्ठ 19 का शेष

अर्जुन और गीता

ऋजु-बुद्धि का अधिकारी :

आगे की सारी गीता समझने के लिये अर्जुन की यह भूमिका हमारे बहुत काम आती है, इसलिए तो हम इसका आभार मानेंगे ही; परन्तु इसका और भी एक उपकार है। अर्जुन की इस भूमिका में उसके मन की अत्यन्त ऋजुता का पता चलता है। खुद 'अर्जुन' शब्द का अर्थ ही 'ऋजु' अथवा 'सरल स्वाभाव वाला' है। उसके मन में जो कुछ भी विकार या विचार आये, वे सब उसने खुले मन से भगवान के सामने रख दिये। मन में कुछ भी छिपा नहीं रखा और वह अंत में श्रीकृष्ण की शरण गया। सच पूछिए तो वह पहले से कृष्ण-शरण था। कृष्ण को सारथि बनाकर जबसे उसने अपने घोड़ों की लगाम उनके हाथों में पकड़ायी, तभी से उसने अपनी मनोवृत्तियों की लगाम भी उनके हाथों में सौंप देने की तैयारी कर ली थी। आइए, हम भी ऐसा ही करें। 'अर्जुन के पास तो कृष्ण थे, हमें कृष्ण कहाँ से मिलेंगे?'– ऐसा हम न कहें। 'कृष्ण' नामक कोई व्यक्ति है, ऐसी ऐतिहासिक उर्फ भ्रामक धारणा में हम न पड़ें। अंतर्यामी के रूप में कृष्ण प्रत्येक के हृदय में विराजमान है। हमारे निकट से निकट वे ही हैं। तो हम अपने हृदय के सब छल-मल उनके सामने रख दें और उनसे कहें–''भगवन्! मैं तेरी शरण में हूँ, तू मेरा अनन्य गुरु है। मुझे उचित मार्ग दिखा। जो मार्ग तू दिखायेगा, मैं उसी पर चलूंगा।'' यदि हम ऐसा करेंगे, तो वह पार्थ-सारथि हमारा भी सारथ्य करेगा, अपने श्रीमुख से वह हमें गीता सुनायेगा और हमें विजय-लाभ करा देगा।

पृष्ठ 30 का शेष

शान्ति कहाँ है?

की साधना बहुत कठिन होती है, लेकिन अभ्यास और वैराग्य से इस साधना को हमारे जीवन में ढाल लेना आसान हो जाएगा। श्री क्षत्रिय युवक संघ वही कर रहा है और इस संसार को बरबादी से बचाने के लिय एक दिन सबको यही करना होगा। तब अब से ही सूझबूझ के साथ अभ्यास और वैराग्य में क्यों न लगें। जो जितना जल्दी प्रकृति से निवृति लेकर ईश्वर की ओर बढेगा, उतनी ही जल्दी शान्ति पाएगा, अन्यथा चौरासी लाख योनियों में चक्कर तो सामने है ही। तो जैसा कहा है 'अपने करों से अपनी तकदीर बना रहे हैं' हमें ऐसा ही करना होगा। तो चलें श्री क्षत्रिय युवक संघ के शिविरों में चलें और 'बनो भाग्य के स्वयं विधाता' को यथार्थ में साबित करें।

*

!! Jai Shree Shyam !!

M/s Rajendra Singh Contractor

(Govt. Contractor) P.H.E.D.

Mobile : 94142 53878

HH-135, Jhalana Gram, Malviya Nagar,
Opp. of Khalsa Palace, Jaipur-17

Off. : UU-42, Yuvraj Stationers, Calgiri Road,
Malviya Nagar, Jaipur

SUMECO
Group of Companies

Dalveersingh H. Chouhan
Chairman & Managing Director
Mob. 9823046704

SUMECO

• CNC Fabrication • Powder Coating • Anodising

Head Office : W- 231 'S' Block, E, MIDC, Bhosari, Pune 26
Email sumecogroup@gmail.com
Website : www.sumecogroup.com
Ph.:27130023 / 24 / 25 /26

Durga Metal Arts

Anodising, Hard Anodising, Chromodising

J-401, J-Block MIDC,Bhosari,Pune 411026
Email- Sales @durgametalarts.in
Website - www.durgametalarts.in
Ph.:- 020 27130011

"over the decade we have established quality of our anodising & Powder cating.
Now with our new veuture we are proud to offer solution in sheet metal fabrication"

All Group of Unit

Durga Metal Arts | Sumeco Metal Powder coating | Sumeco Metal Pressing Pvt. Ltd | Alukon Fabricators Pvt. Ltd.

जनवरी, सन् 2018
वर्ष : 55, अंक : 01

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60
डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City /411/2017-19

संघशक्ति
ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर-302012
दूरभाष : 0141-2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org

श्रीमान् .....

.....

.....

स्वत्वाधिकारी श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास के लिये, मुद्रक व प्रकाशक, लक्ष्मणसिंह द्वारा ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर से : गजेन्द्र प्रिन्टर्स, जैन मन्दिर सांगाकान, सांगों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर फोन : 2313462 में मुद्रित। सम्पादक-लक्ष्मणसिंह